श्री

किमपि प्रास्ताविकम्—

ले० श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल, एम्० ए०-पी० एच्० डी० डी०-लिट्
अध्यक्ष—पुरातत्त्वविभाग, काशीहिन्दूविश्वविद्यालय बनारस

वैदिक साहित्य समस्त भारतीय संस्कृति का शीर्ष स्थानीय है। महान् संस्कृत-साहित्य जो हमारे राष्ट्र का गौरव है, मूलभूत आर्य वैदिक साहित्य से ही विकसित हुआ है। भारतीय धर्म दर्शन और तत्त्वज्ञान के समस्तसूत्र वैदिकसाहित्य में पिरोए हुए हैं। वेद से ही भारतीय साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में प्रकाश और मंगल का विधान संभव है। वैदिक साहित्य, जैसा कि संहिता ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषदों में सुरक्षित है, सृष्टि के तत्त्वज्ञान की सब से उत्तम और विराट् व्याख्या है। अर्वाचीन युग में मानवीय मस्तिष्क सृष्टि के रहस्यों को जानने का समस्त प्रयत्न कर रहा है। इस प्रयत्न का अर्वाचीन शास्त्र विज्ञान है। सृष्टि का यह रहस्य अनादि अनन्त है। पूर्वकालीन ऋषियों ने उसे 'संप्रश्न' यह नाम दिया था। उसी धरातल पर विचार करते हुए अर्वाचीन दार्शनिक मोरिस मेटर लिंक ने सृष्टि के रहस्य को The Great Question की संज्ञा दी है, जो कि वैदिक 'संप्रश्न' का ही अनुवाद है। सृष्टि के इस महान् रहस्य को ऋषियों ने अनिरुक्त प्रजापति कहा था, और उस अनिरुक्त प्रजापति को ही बीजगणित की परिभाषा में 'कः' यह संकेत दिया गया। गूढ तत्त्व की जिज्ञासा के लिए वैज्ञानिकों की अनवरत खोज, और ऋषियों की 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' इस मार्मिक वाणी में कोई अन्तर नहीं है। मूलतत्त्व, अथवा रहस्य एक है। पूर्व और पश्चिम, अतीत और वर्तमान के अन्तर से उसमें कोई अन्तर संभव नहीं। इसप्रकार सृष्टिविद्या के सम्बन्ध में ऋषियों का जो वैज्ञानिक तत्त्वानुसन्धान था, उसी ज्ञान विज्ञान का समुचित नाम वेद है।

भारतवर्ष में सर्वसम्मति से वैदिक परम्परा की श्रेष्ठता को स्वीकार किया गया है। यह दुर्भाग्य था कि, कालान्तर में वैदिक विज्ञान को भी लोगों ने सम्प्रदाय और दुराग्रह का विषय बना डाला। वेद के सम्बन्ध में तत्त्वबोध की दृष्टि से विचार करते हुए हमें सम्प्रदायवाद पर विचार नहीं करना है, किन्तु उस युक्ति को प्राप्त करना है, जिस युक्ति से उस विज्ञान के सृष्टिविद्यात्मक रहस्य को अर्वाचीन मानव की बुद्धि पुनः समझ सके। मन्त्रों का सार उनकी परिभाषाएँ हैं। जिस प्रकार आज भौतिक विज्ञान एवं उच्च गणितशास्त्र का सम्यक् परिचय उनकी जटिल परिभाषा को जाने बिना कोई व्यक्ति प्राप्त नहीं कर सकता, ठीक वही स्थिति वैदिकतत्त्वज्ञान के विषय में है। वेद की भाषा सृष्टिविद्या की प्रतीक भाषा है। एक ही शब्द के अर्थों की गति भिन्न २ क्षेत्रों में साथ साथ विकसित होती है। ब्रह्माण्डव्यापिनी दिव्य शक्तियों में और मानवीय शरीर में

हुए बिना एक उपनिषद् क्या, एक मन्त्र का अर्थ भी निश्चित रूप से नहीं समझा जा सकता। हिरण्मय पात्र कौन है ?, उसमें रक्खा हुआ सत्य क्या है ?, इसका ढक्कन क्या है ?, पूषा कौनसा तत्त्व है ?, और किस प्रकार यह स्वर्ण आवरण को हटाकर सत्य का दर्शन करा सकता है ?, इन अन्तिम प्रश्नों का उत्तर जिस धरातल पर प्राप्त किया जा सके, वही सचमुच वेद का धरातल है। इन परिभाषाओं का तथ्यात्मक समाधान ही उपनिषद् के अर्थों का सच्चा परिचय है, जो इस प्रकार है। हमारा यह मस्तक हिरण्मय पात्र है, जिसे मस्तुभान कोष, या सुनहरी डिब्बा भी कहा जाता है। इस हिरण्मय कोषमें ज्ञान की रश्मियों से ढका हुआ, या सुरक्षित सत्य तत्त्व रक्खा है। स्वयम्भू, या आत्मतत्त्व का नाम ही सत्यतत्त्व है। हिरण्य, या स्वर्ण भी उस अमृत तत्त्व की संज्ञा है। आत्मतत्त्व का वैदिक प्रतीक हिरण्य, या सुवर्ण था। यह सुवर्ण हमारे इस कोष में सुरक्षित इतना सन्निकट है, किन्तु फिर भी प्राप्य नहीं होता। इसे प्राप्त करने का एकमात्र उपाय पूषाप्राण की सहायता है। पूषा शारीरिक श्रम का प्रतीक है, उसी का नाम तप है। सर्वात्मना अपने आप को समर्पित करना ही तप है—

"एतद्वै तप इत्याहुर्यत् स्वं ददाति" यह एक अति संक्षिप्त उदाहरण है। वेद तो इन परिभाषाओं का ऐसा महान् कोष है, जो अक्षय्य और असीम है। प्रजापति का स्वरूप क्या है?, इसी एक प्रश्न का निश्चित समाधान वैदिक विज्ञान की प्रक्रिया से हम कर सकें, तो प्राचीन और नवीन समस्त सृष्टिविज्ञान को आत्मसात् करना होगा। यह प्रजापति महा अक्ष है, वह केन्द्र है। केन्द्र की संज्ञा काल है। उसीका वितान, या महिमामण्डल विश्वेश कहलाता है। उस प्रजापति का सम्वत्सर रूप में आना ही सृष्टि है। उसी संवत्सर की एक विभक्ति अहोरात्र है। प्रजापति के अमृत और मर्त्य, अथवा ऋत और सत्य, अथवा अग्नि और सोम, इन दो रूपों से ही जैसे संवत्सर, या अहोरात्र का निर्माण होता है। वैसे ही पुरुष का निर्माण भी हुआ है। सम्वत्सरविद्या का ज्ञान ही पुरुषजीवन के विधान का परिचय प्राप्त करना है।

वेदों में सृष्टि की प्रक्रिया को समझने के जो अनेक दृष्टिकोण हैं, उन्हें एक एक विद्या कहते हैं। इस प्रकार की सैकड़ों विद्याएँ वैदिक साहित्य में विद्यमान हैं। प्रजापतिविद्या, संवत्सरविद्या, अक्षरविद्या, उद्गीथविद्या, मधुविद्या, प्राणविद्या, प्रवर्ग्य या धर्मिष्ठविद्या, पर्यङ्कविद्या संवर्गविद्या, परिमरविद्या शुनःशेपविद्या, अग्निचयनविद्या, वषट्कारविद्या, स्तोमविद्या, स्कम्भविद्या हिरण्यगर्भविद्या, पवमानविद्या, वाजपेयविद्या, अतिरात्रविद्या अश्वविद्या, पञ्चज्योतिर्विद्या, रोदसीविद्या त्रैलोक्यत्रिलोकीविद्या, त्रिवृद्विद्या, आम्भृणीविद्या, बृहतीविद्या, पशुमेधविद्या, परमाकाशविद्या पुराणाकाशविद्या, दहराकाशविद्या पणविद्या, दशार्गलविद्या, शकटविद्या, दमविद्या, कृष्णमृगविद्या, वितानविद्या, आमानविद्या, परमाण्वविद्या, मन्थीविद्या, क्रन्दसीविद्या एमूषवराहविद्या, अन्तर्यामविद्या सोमग्रहविद्या, सौदाम्नविद्या, विश्वादविद्या, 'अनिरुक्तविद्या,

मनश्चयविद्या, कूर्मविद्या, धूर्मविद्या, अनाम्नमहिविद्या, [illegible], [illegible]विद्या, [illegible],
क्रोऽस्मविद्या, रेतोऽस्मविद्या, रात्रस्मृति वा, [illegible]विद्या, [illegible], [illegible],
इरामयपुरुषविद्या, स्वैतनीवसविद्या, पतिमेसिविद्या, [illegible], [illegible], [illegible]
एकचमसरुद्रविद्या, [illegible]विद्या, लोकविद्या, सिन्धुमातृविद्या, [illegible], [illegible], [illegible]-
विद्या, [illegible]पुरुषविद्या, मनोतामविद्या, मधुरवविद्या, [illegible]विद्या, सोमविद्या, [illegible],
सागरस्वरातविद्या, गायत्रीविद्या, सुपर्णविद्या, वामनविद्या, [illegible]विद्या, इत्यादि विद्याएँ एक
ओर सृष्टितत्त्व का, और उसीके साथ मानवीय जीवन का शरीरतत्त्व की व्याख्या करती हैं। प्रजा-
पति का जो स्वरूप ब्रह्माण्ड में है, वही पिण्ड के प्रत्येक पर्व में है। उसीकी महिमा सहस्रधा
सहस्र है। उसीका यहां विस्तार है। इस प्रकार अनेक विद्याओं और अनन्त परिभाषाओं से
समन्वित जो निगमशास्त्र था, वही आर्यसंस्कृति की मूल प्रतिष्ठा थी। उसी से भारतीय धर्म,
साहित्य और संस्कृति का वितान हुआ है। सत्य तो यह है कि, किसी भी पुराण या दर्शन आदि
के मूल तत्त्व को समझना चाहें, तो वैदिक तत्त्व की शरण में जाना आवश्यक होगा।

प्रश्न यह है कि, इस समय जो वैदिक साहित्य का पठन पाठन, व्याख्या या अर्थ की पद्धति
प्रचलित है, उससे इस आर्ष निगमविद्या पर कहाँ तक प्रकाश पड़ता है? यदि हम स्वयं अपने ही
लिये सचाई से इस प्रश्न का उत्तर देना चाहें, तो यह मानना पड़ेगा कि उस अर्थ की, जिस वैदिक
साहित्य की विज्ञानपरम्परा प्रायः लुप्त हो चुकी है। जो प्राचीन भाष्य और टीकाएँ हैं, उनसे संतोष-
जनक समाधान प्राप्त नहीं होता। उसका मूल कारण यह है कि, यज्ञिय कर्मकाण्ड के पीछे जो अध्यात्म
आधिदैवत और आधिभौतिक अर्थों का विराट् ताना बाना था, उस पर टीकाकारों ने विशेष ध्यान
न दिया। वैदिक तत्त्वशोध की समस्या का मुख्यरूप ब्राह्मणग्रन्थों की पारिभाषिक पद्धति में ही
अन्तर्निहित है। ब्राह्मणग्रन्थ हमारे लिये एक चुनौती हैं। मैक्समूलर ने उसकी अक्षमता विवशता
में स्थान पर लिखा था कि, ब्राह्मणग्रन्थ बाल बुद्धि के खिलवाड़ हैं। अथवा पागलपन लोगों की बहक
जान पड़ते हैं। पश्चिम में वेद के जितने भाष्य या ग्रन्थ लिखे गये हैं वे एक भी मंत्र की सच्ची
व्याख्या करने में असमर्थ हैं। उसी भ्रमपूर्ण व्याख्या की परम्परा भारतीय विश्वविद्यालयों में भी
चल रही है। इस अन्धकारपूर्ण स्थिति से आत्म उद्धार करना परम आवश्यक है, और इस कार्य
का राष्ट्रीय महत्त्व है।

आर्ष विज्ञान की तत्त्वशोध करते हुए जयपुर निवासी श्री पं मधुसूदनजी ओझा का अपूर्व-
पूर्व सफलता प्राप्त हुई। उन्होंने मुख्यरूप से ब्राह्मणग्रन्थों को ही अपना आधार बनाया, और
अपनी अविचल प्रज्ञा एवं परिशुद्ध तपस्या से दीर्घकालीन मनन पूर्वक प्राचीन निगम विद्याओं का
परिष्कार किया। उन्होंने वैदिक सृष्टिविद्या को विज्ञान की प्रणाली से प्रकाशित किया। यद्यपि वेद
की विद्याओं का यह विषय पुराना था, किन्तु उसपर उन्होंने नए ढंग से प्रकाश डाला। इस विषय
में उनका कथन है—

यत्र प्रदर्शा शिपगा पुरातना यत्र प्रकारोऽमिनव प्रदर्शने ।
यत्र प्रमाणं श्रुतयः सयुक्तयस्तद् ब्रह्मविज्ञानमिदं विमृश्यताम् ॥

सौभाग्य से इस ब्रह्मविज्ञान की विस्तृत व्याख्या करने वाले ग्रंथ सौ से ऊपर, प्रज्ञ स्व० पं० मधुसूदनजी ने लिखे थे। इसके साथ महान् सौभाग्य यह हुआ कि, इन आर्षविज्ञान को उनके शिष्य पं० मोतीलालजीशास्त्री ने दीर्घकाल तक अपने गुरु के चरणों में बैठकर प्राचीन पद्धति से प्राप्त किया। 'प्रवर्ग्येऽस्मिन् शाखायि' के निगमानुसार वह आर्षविज्ञान उनमें और भी पल्लवित हुआ। उन परिभाषाओं विद्याओं और मन्त्रों को राष्ट्रभाषा हिन्दी में व्याख्यानरूप से लाने का कार्य पण्डित जी ने दीर्घकालीन परिश्रम से संपन्न किया है। यह साहित्य राष्ट्र की अमूल्य निधि है। इसकी सूची परिशिष्ट रूप में संलग्न है।

विगत पन्द्रह वर्षों में पण्डित जी ने काशी, कलकत्ता, बम्बई हैदराबाद आदि स्थानों में प्रचारयात्रा एवं व्याख्यानों द्वारा इस साहित्य के प्रति जनता का उद्बोधन कराया है। फलस्वरूप उसका लगभग अष्टमांश, जो दस सहस्र पृष्ठों के बराबर होता है, प्रकाशित हुआ है। इसमें जिन उदार महानुभावोंने सहानुभूति, सहायता और सहयोग प्रदान किया, उनके हम कृतज्ञ हैं। किन्तु समस्या बहुत बड़ी है। उसके समुचित समाधान के लिये सुव्यवस्थित प्रयत्न करने की आवश्यकता है। इसी उद्देश्य से 'राजस्थानवैदिकतत्त्वशोधसंस्थान' नामक संस्था का संगठन किया गया है। यह संस्था राजस्थान शासनद्वारा नियमानुसार पञ्जीबद्ध (रजिस्टर्ड) करा दी गई है।

इस परिपत्र द्वारा हम उन समस्त महानुभावों के सहयोग का आवाहन करते हैं जो इस कार्य के महत्त्व का यत्किञ्चित् भी अनुभव करते हों। यह अत्यन्त उत्कृष्ट पुण्यकार्य है। एक प्रकार से यह उस प्रकार का विशिष्ट प्रयोग है, जिसके द्वारा वैदिक विज्ञान पर पड़े हुए आवरण को दूर कर उसे अर्वाचीन भारतीय प्रज्ञान के समक्ष प्रकाशित किया जा सकता है। वैदिक विज्ञान अत्यन्त तेजस्वी है। निश्चयेन वह सृष्टिविद्या की उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण व्याख्या है, जो अर्वाचीन विज्ञान द्वारा हमें प्राप्त होता है। यह मानना आवश्यक है, कि वैदिक विज्ञान और अर्वाचीन विज्ञान इन दोनों का मौलिक विरोध नहीं है। विज्ञान भौतिक जड़ तत्त्व तक ही सीमित है। किन्तु वैदिक विज्ञान भूत या मर्त्य को अपने गर्भ में धारण करता हुआ उसे आधार बना कर चैतन्य प्रजापति के अमृत स्वरूप का भी परिज्ञान कराता है। इस प्रकार वैदिक विज्ञान अर्वाचीन भौतिक विज्ञान का सच्चे अर्थों में उपकारी हो सकेगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

इस संस्था के द्वारा दो कार्य संसिद्ध करना हमारे लिये आवश्यक है और यही हमारा लक्ष्य है—

परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए वैदिक विज्ञान के इस कार्य को आगे बढ़ाया है। किन्तु अब निश्चित समय आ गया,जबकि सार्वजनिकरूप में इस महनीय कार्य को व्यवस्थित किया जाय। धन, सम्पत्ति और व्यक्ति तो बहुत प्राप्त हो सकते हैं, किन्तु वैदिक विज्ञान का तत्त्ववेत्ता दुर्लभ है। सौभाग्य से यह निधि प्राप्त हो गई है। उसका संरक्षण और संवर्द्धन हमारा तात्कालिक कर्त्तव्य है। इसी ध्येय को सम्मुख रखकर हम आर्यसंस्कृति की भक्त हिन्दूजनता से निवेदन करते हैं कि, वह वैदिकतत्त्व-शोधसंस्थान और ब्रह्मवैराजिकविश्वविद्यालय की स्थापना में मुक्तहस्त होकर साहाय्य प्रदान करे। पुराण और दर्शन स्मृति और संतसाहित्य की रक्षा के लिये आज अपरिमित धनराशि का व्यय किया जा रहा है। वेद की रक्षा के लिये उससे कहीं अधिक गम्भीर और उच्चस्तरीय प्रयत्न होने की आवश्यकता है।

राष्ट्र के सौभाग्य से इस प्रकार के उच्चस्तरीय प्रयत्न की दिशा आज हमें प० मोतीलालजी शास्त्री के रूप में सुलभता से प्राप्त है। गत ४० वर्षों से अपनी साहित्य-साधना में दिनरात संलग्न रहने वाले इस तपस्वी मनीषी ने अपने पारिवारिक तथा सामाजिक संघर्ष सहते हुए अपना स्वास्थ्य बिगाड़ लिया है, और यह एक महती चिन्ता का विषय है। राष्ट्र की थोड़ी सी भी उपेक्षा राष्ट्र को इस विज्ञानदृष्टि से पुनः वञ्चित कर देगी, जो अनेक शताब्दियों के बाद इसे मिली है। यही अनुभव कर हमनें गत वर्ष से ही इस विज्ञाननिधि की ओर भारतजगत् का ध्यान आकर्षित करने के लिए एक ज्ञानसत्र का उपक्रम किया है, जिसके अबतक दो अनुष्ठान सफलता पूर्वक सम्पन्न हो चुके हैं। इन दोनों वार्षिक सत्रों में स्थानीय विद्वानों के अतिरिक्त बनारस के भी कतिपय मधावी विद्वानों नें भाग लिया है।

किन्तु उक्त सामान्य से आयोजन से ही हमारे संकल्प की समिद्धि सम्भव नहीं है। इसके लिए तो महारम्भ यथा व्यवस्थित आयोजन शीघ्र से शीघ्र ही हमें कर डालना है, जिसके द्वारा मिश्रशास्त्र जी की इस विज्ञानराशि को स्वाध्यायपरम्परा के माध्यम से चेतनपरम्परा में प्रतिष्ठित कर दिया जाय। इसी उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए हमारे विशेष आग्रह से पण्डितजी ने भाजापत्यनिष्ठाकी आधाररूपा मत्स्यगुणयुक्त विचारसमन्वितलक्षणा श्वेतभास्वि के महान् सन्देश से हमें अवगत कराया है, जो इसी परिपत्र के साथ संलग्न है। राष्ट्रीय मानव के जीवन का मुख्य उद्देश्य क्या है?, किन-किन साधनोपायों से स्वस्तिभावपूर्वक प्रकृतिस्थ रह सकता है?, इत्यादि प्रश्नों का नैसर्गिक उत्तर देते हुए पण्डितजी ने अपने इस महान् सन्देश में विलुप्त वैदिकविज्ञान के पुनः स्थापना की ओर राष्ट्र का ध्यान आकर्षित किया है। हमारी ऐसी सुदृढ़ आस्था है कि, यह भाजापत्य प्रधान ही आज के इस भूतविज्ञान-युग में मानव को अजिता राजपद्धति की ओर अग्रेसर कर सकेगा है।

श्वेतक्रान्ति का महान् सन्देश

एवं

श्वेतक्रान्ति का घोषणापत्र

श्रीः

श्वेतक्रान्ति की घोषणा के सङ्केतित विषय——

——※——

ओं तत् सद् ब्रह्मणे नमः

नमः परम-ऋषिभ्यः नमः परम-मानवेभ्यः

मानवोक्थवैराजिकब्रह्मौघ (मानवाश्रम)

की

श्वेतक्रान्ति का घोषणापत्र

अग्निर्जागार तमृचः कामयन्ते, अग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥

—ऋक्संहिता ५।४४।१५

इमे वै लोका विष्णोर्विक्रमणम्, विष्णोर्विक्रान्तम्, विष्णोः क्रान्तम्। तदिमानेव लोकान्त्समारुह्य सर्वमेवेदमुपर्युपरि भवति। अर्वागेवास्मादिदं सर्वं भवति। (सैषा प्राजापत्या विष्णुक्रान्तिः, सैव श्वेतक्रान्तिः, तदाधारभूतैव एति प्रति-मूला त्रैलोक्यक्रान्ति-रग्निजागरणनिबन्धना) ॥

—शतपथब्राह्मण ५।४।२।६।

आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निर्वहिता। ते यदन्तरा-तद् ब्रह्म, तदमृतं, स आत्मा। प्रजापतेः सभां वेश्म प्रपद्ये। यशोऽहं भवामि। ब्राह्मणानां यशः, राज्ञां यशः, विशां यशः। अहमनुप्रापत्सि स हाहं यशसां यशः श्येतमदत्कमदत्कं श्येतं, लिन्दु माभिगां लिन्दु माभिगाम्।

—छान्दोग्योपनिषत् ८।१४।

(१)—प्राजापत्यनिष्ठा की पराङ्मुखता—

आज से पाँच सहस्र वर्ष पूर्व अभिव्यक्त हो पड़ने वाली कृष्णद्वैपायन भगवान् व्यास की—'सुदुर्लभा वदद्विद्वांस' इस इसी अनन्यतम कटु अनुभूति से समन्वित परमर्षि महर्षिमानव श्रेष्ठ की पुराणी प्रज्ञा से आविर्भूत रहस्यपूर्ण 'प्राजापत्यवेदशास्त्र' भारतीय जनमानस की पर प्रत्ययनयमूला सहज भावुकता के अनुबन्ध से अपनी निष्ठानुबन्धिनी सांस्कृतिक गरिमा-महिमा से अन्तर्मुख ही प्रमाणित होता चला आ रहा है।

अपनी प्रज्ञापराधमूला बहिर्मुखता व्यापक भावुकता के व्यामोहन के कारण अनेक शताब्दियों से अन्तर्मुख-अव्यक्त-प्रमाणित होती रहने वाली प्राजापत्या आर्षनिष्ठा (चन्द्रनिष्ठा) से

वञ्चित रहता हुआ भारतीय मानव सत्त्वादिविनिर्मित वर्णयुगानुगत सामयिक रक्षा-मर्यादाओं से सर्वथा असम्बन्धित उन महोपहों के विभिन्न कामरूपता से उस सीमापर्यन्त आक्रान्त हो चुका है, जिस सीमाबिन्दु पर पहुँचने के मानव की आत्मानुबन्धिनी शान्ति, बुद्ध्यनुबन्धिनी तृप्ति, मनोऽनुबन्धिनी तुष्टि, एवं नुबन्धिनी पुष्टि, चारों ही मानवीय-पर्वसम्पत्तियें शान्ति-तृप्ति-तुष्टि-पुष्टि-इन चारों विभूतियों से वञ्चित बनती हुई प्रकृतिसिद्ध सहज स्वरूपबोध से सर्वथा ही पराङ्मुख बन जाया करती हैं।

(२)—निष्ठाप्रतिबन्धक नवग्रहाक्रमणवाद—

संस्कृतीय उन्नयपरम्पराओं से दुर्बोध्य बने रहने वाले जिन नव ग्रह-मार्गों ने अपनी मत्सरता से भारतीय मानव की आचारानुगता स्वरूपनिष्ठा को स्वस्थान बनाते हुए केन्द्रबिन्दुच्युत कर दिया है, उन नव ग्रहों के तथ्यमूल्य कोरकर मलीमस इतिहास के आत्मावलम्बीय जनद् विजृम्भणा में न पड़ते हुए प्रस्तुत वक्तव्य में उनका केवल नामोल्लेख कर देना ही हम पर्याप्त अनुभूत कर रहे हैं। वैयक्तिक-पारिवारिक-सामाजिक-राष्ट्रीय-तथा विश्वानुबन्धिनी ऐहिक आमुष्मिक अभ्युदय-निःश्रेयस् पथ की संग्राहिका जीवनीयरसमयप्राणात्मिका आत्मिक-दैविक-भौतिक-उत्तरदायित्वपूर्णा कर्त्तव्यनिष्ठा से समन्विता एवंविधा आचारमीमांसा से एकान्तत असंस्पृष्ट, अतएव नितान्त भावुकतापूर्ण केवल तत्त्ववादात्मक दर्शनवाद इस देश का यह महा ग्रहग्रह है, जिस भौतिक महाग्रह के व्यामोहन से ही भारतीय मानव आचारनिष्ठालक्षण कर्त्तव्यता से पराङ्मुख हुआ है। इसी दर्शनवाद के अनुग्रह से आगे चल कर उन शेष ग्रहों का क्रमिक आविर्भाव हो गया है, जिस क्रमिक स्खलन के लिए संस्कृतसाहित्य में 'विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः' आभाणक प्रसिद्ध है।

१—आचारमीमांसासम्मत स्वरूपधर्मानुगत तपोभावात्मक ज्ञान एवं तन्मूल ज्ञान के आधार पर प्रतिष्ठित गुणभूतात्मक चर-अणुभूतात्मक पञ्चजन-रेणुभूतात्मक पुरञ्जन-भूतभौतिकात्मक-पुर आदि विविध ज्ञानसमन्वित वस्तुस्वानिर्माणक विज्ञान * की भी यथाविधमन्वय-

---

* एकं ज्ञानं ज्ञानम्, मूलात्मकं ज्ञानं 'ज्ञानम्'। एवं-विविधं ज्ञानं (तूलात्मकं ज्ञानं) विज्ञानम्।

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ॥
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥

—गीता

मिका दृष्टिमात्र से भी सर्वथा असंस्पृष्ट, इस प्रकार आचारात्मक कर्त्तव्यप्रवर्त्तक विज्ञान से सर्वथा बहिर्भूत केवल काल्पनिक तत्वज्ञान के विजृम्भणमात्र से समाप्लुत इत्थंभूत (१)—समार्शिक-दर्शनवाद,

२—एवंविध दर्शनवाद के द्वारा समुद्भूत परस्परात्यन्तविरुद्ध-विधिनिषेधविभ्रामक-विरुद्धनानाकोऽयवगाहिज्ञानानुगत संशयभावसमन्वित-अतएव 'इदमित्थमेव नान्यथा' लक्षण निश्चित-संशयरहित कर्त्तव्यबोध कराने में सर्वथा असमर्थ- धर्म्मभीरु भावुक भारतीय मानव की तात्कालिक भावुकतामात्र के संरक्षणमात्र में उपलालनमाध्यम से पुराण- विविध स्मृति निबन्धन इत्थंभूत (२)-स्मार्त्त धर्म्मवाद (मतवाद),

३—एवंविध धर्म्मवाद के अनुग्रह से आविर्भूत सम्प्रदायवादाभिनिविष्ट व्याख्याताओं के स्व स्व सीमित साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के आधार पर पुष्पित पल्लवित, धार्मिक-व्रत-तीर्थ-क्षेत्र-आशौच-श्राद्ध-देवपूजन-आदि आदि आचारों के निर्णय पथ के लिए बद्धपरिकर, किन्तु मतवादाभिनिवेशानिग्रह से निष्पक्षदृष्टि से सर्वथा पराङ्मुख, अतएव नैष्ठिक निर्णयविभ्रामक इत्थंभूत (३)—नैबन्धिक निर्णयवाद,

४—एवंविध निर्णयजाल से संक्षुब्ध बन जाने वाले मानव के प्रतिक्रियात्मक मानस की निराशा तथा अस्थिर प्रज्ञा से समुद्भूत, अमृतपुत्र मानव के सहज प्राकृतिक ऐश्वर्य्य को निःसीमरूपेण अभिभूत कर देने वाली स्वस्वरूपविस्मृति की महती प्रतिबन्धिका 'अस्मिता' के आधार पर प्रतिष्ठित, अतएव दासानुदासभावसंश्रक, अतएव च सर्वथा पशुसमनुसित परावलम्बभावसमाप्लुत हीनमन्यसमुत्तेजक काल्पनिक भक्तिभावानुप्राणित इत्थंभूत (४) भाक्त सम्प्रदायवाद,

५—एवंविध सम्प्रदायवादसापेक्ष मनोभाव के परिपोषक परंपरक दम्भभाव के आधार पर प्रतिष्ठित ज्ञानविज्ञानात्मिका निकषा (कसौटी) के परीक्षण से सर्वथा बहिष्कृत, वाद-जल्प-वितण्डा-हेत्वाभास-जातिनिग्रह-छल-आदि आदि वञ्चनासाधनों से समन्वित, शुष्क-निरर्थक-तर्कशून्य-तर्कजाल से अनुप्राणित, पण्डितम्मन्यवर्ग के द्वारा पुष्पित पल्लवित इत्थंभूत (५)-दाम्भिक शास्त्रवाद,

६—एवंविध शास्त्रवादसंस्कार से संत्रस्त, 'यत्र शाब्दिकाः' * पथानुसारी, गतानुगति

— श्रुतिर्विभिन्ना स्मृतयो विभिन्ना नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम् ।
धर्म्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्था ।

* यत्र शाब्दिकाः, स्तत्र तार्किकाः । यत्र तार्किकाः, स्तत्र शाब्दिकाः ।
यत्र नोभयास्तत्र चोभयाः । यत्र चोभयास्तत्र नोभयाः ॥

के कारण अपनी मूलभूता प्राज्ञानरवरा। पराङ्मुख बनजाने वाले महामस्त एतद्देशीय १–दार्शनिक, २–धर्म्माचार्य्य, ३–धर्म्मनिर्णायक, ४–सम्प्रदायाचार्य्य, ५–शास्त्रभक्तविद्वान्, ६–उपदेशक, ७–कल्याणपथभक्त, ८–स्वतन्त्रताप्रेमी, एवं ९–सुधारक, इन नवविध विवेचकों के परस्परात्यन्तविरुद्ध–विमर्शनों के दुष्परिणामस्वरूप ही दुर्भाग्यवश आज इस आर्षप्रज्ञानपरम्परानुगतधर्म्मनिष्ठ भी भारतदेश के संविधान में 'धर्म्मनिरपेक्ष' भाव समाविष्ट होपड़ा है, जिसका एकमात्र उत्तरदायित्व तथाकथित इस नवग्रहमण्डल, तदनुविवेचक, तदनुगतानुगतिकसमाज से ही सम्बद्ध माना जाना चाहिए, जिसकी प्रज्ञापत्यनिष्ठाविस्मृति ने ही एतद्देशीय सहज आर्षधर्म्मनिष्ठ भी जनमानस को नतमस्तक बनकर आज अपने संविधान की 'धर्म्मनिरपेक्ष' वाक्यघोषणा का समादर करना पड़ रहा है करना ही पड़ेगा, करना ही चाहिए। आस्तव्यस्तम्। सैषा स्थितिः। स्थितस्य गतिरिचिन्तनीया।

(३)–नवग्रहप्राहों से मानव की निष्ठा का अभिभव—

स्थितिचिन्तन के मूलाधारभूत यथोपवर्णित नवमहामण्डल, एवं नितान्त अवधेय नवमहाविवेचकवर्ग के स्वस्वाभीष्ट निमित्तभूत प्रज्ञापाशों से आबद्ध हो जाने वाली भारतीय आर्षजनता की आत्ममूला सत्त्वगुणविभूति, तद्गुणमूला स्वतविभूति आज से पाँच सहस्रवर्ष पूर्व ही इस सीमापर्य्यन्त अभिभूत हो गई थी, जिसके अनुबन्ध से महामण्डलोदयात्मक तदारम्भकाल (महाभारत युग) में ही नितान्त धर्म्मभीरु विशुद्ध भावुक अमु नप्रमुख पाण्डवों के, तथा नितान्त कर्म्मभीरु केवल अमविष्ट दुर्य्योधनप्रमुख कौरवों के माध्यम से हिंसाप्रवृत्तिमूला युद्धप्रवर्तिका रजोगुणमूला वह 'रक्तक्रान्ति' आविर्भूत हो पड़ी थी, जिस महाभारतयुगानुगता रक्तक्रान्ति ने सम्पूर्ण लोकविभूतियों को एकप्रकार से तद्युग में निःशेष ही प्रमाणित कर दिया था।

इदमत्र नितान्तमवधेयम्

नवग्रहमण्डल–तद्विवेचकवर्गतालिका—

१—सृष्टितत्त्वविमर्शपराः	— तत्त्ववादिनः	— दार्शनिकविवेचकाः
२—धर्म्मतत्त्वविमर्शपराः	— धर्म्मवादिनः	— स्मार्तविवेचकाः
३—विधिनिषेधविमर्शपराः	— धर्म्मनिर्णेतारः	— नैबन्धिकविवेचकाः
४—भक्तितत्त्वविमर्शपराः	— भक्तिनिर्णेतारः	— साम्प्रदायिकविवेचकाः
५—शास्त्ररक्षणविमर्शपराः	— शास्त्रभक्ताः	— विद्वांसो विवेचकाः
६—सर्वविमर्शपराः	— सर्ववादिनः	— उपदेशकविवेचकाः
७—सर्वविमर्शशून्याः	— विश्वासवादिनः	— कल्याणभावविवेचकाः
८—लोकशिक्षणपटवः — नीतिनिपुणाः	— प्रतीच्यपथानुगामिनः — नवाः	— भारतीयाः
९—सर्वशिक्षणपटवः — मन्याधशून्याः	— निरङ्कुशसमभावाः	— समाजसुधारकाः

सर्वलोकाभिभूतिसंहारिका परस्परात्मापहारिणी हिंसामयी कुत्साप्रवृत्तिमूला इस के दुष्परिणामस्वरूप आगे चल कर सर्वविश्वासमयी रजस्तमोगुणमयी यह हो गयी, जिसने सत्त्वकर्म्ममूलक सर्वविनिमयसाम्य की उपेक्षा कर के माध्यम से सम्पन्न और दरिद्र, जैसे विषम भावों का सर्जन कर डाला। इसी पीतकान्ति अन्ततोगत्वा तमोगुणमयी उस 'कृष्णकान्ति' की सर्जिका बन बैठी, जिसके से मानवीयप्रजा अपने आत्मा, बुद्धि, मन, तीनों चेतनतन्त्रों से सर्वथा अभिभूत होती हुई लिप्सात्मक अशनपानमात्रात्मक भौतिक शरीर को ही मानवजीवन का मुख्य लक्ष्य मान की अपवाद भ्रान्ति कर पड़ती है। इस प्रकार क्रमानुबन्ध से अभिभूत हो पड़ने वाली कृष्ण-कान्तियों के निग्रहानुग्रह से मानव का आत्मस्वरूप सर्वथैव अभिभूत हो गया, अभिभूति का यों स्पष्टीकरण किया जा सकता है।

(४)—रक्त-पीत-कृष्ण-कान्तियों की विकृतियाँ—

आत्मसत्याभिव्यक्तित्व से शून्या इन्द्रियभावानुगत—आहारनिद्राभयमैथुनादि—पशुधर्मों से उपलालिता, भोगलिप्सानुगत—अभिनिवेशनिबन्धना, अहंभावनिबन्धन भौतिक शरीरमात्र को ही अपना मुख्य केन्द्र मान लेने वाली केवल तमोगुणमयी कृष्णकान्ति ने मानव को आज किस सीमापर्य्यन्त तमसा अभिभूत कर लिया है !, प्रश्न भी आज राष्ट्रीय प्रजा के समाधान क्षेत्र के लिए सर्वथा अनतिप्रश्न ही प्रमाणित हो गया है। एवमेव आत्मसत्यस्पर्श—(रहित)—सहयोग-वर्जिता वासना-भावनानुगत-आसक्तिभावनिबन्धना, परमस्वत्वनिबन्धनममत्वभावानुगत—कामक्रोध-लोभमोहमदमात्सर्य्यादि कामभावों से उपलालिता सर्वेन्द्रियनिबन्धन सौम्य मनोमात्र को ही अपना मुख्य लक्ष्य बना लेने वाली रजस्तमोगुणमयी पीतकान्ति ने आज मानवीय मानस को किस प्रकार विद्यमान—क्षुब्ध—अशान्त—परिभ्रान्त एवं दिग्भ्रान्त बना दिया है !, प्रश्न भी आज सर्वथा […] त्यक्कोटि में ही समाविष्ट हो चुका है। तथैव आत्मसत्यसम्बोधपराङ्मुखा विषय—काम—कर्म-शुक्रादिभावानुगत—अस्मिताभावनिबन्धना नवनवोन्मेषशालिनी—प्रतिपद्यविलक्षण—वयस्सामान्य—लोकैषणात्मक-भूतविज्ञाननिबन्धन—तात्कालिकरूपेण आपातरमणीय—आकर्षक भौतिक वाणिज्य विज्ञान के आकर्षण से सर्वथैव अभिभूता बुद्धिमात्र को ही अपने पौरुषप्रदर्शन की आधारभूमि मानने वाली रजोगुणमयी रक्तकान्ति ने मानवीय सहज प्राकृतिक स्वस्तिरप्रशस्तिपथ को किस सीमापर्य्यन्त विकृत कर दिया है ? प्रश्न भी आज सीमा का उल्लंघन कर चुका है।

(५)—प्रकृतिस्थ, एवं स्वस्थ मानव का उत्पीड़न—

प्रकृत्या सर्वसाधनपरिग्रहसम्पन्न होने से अपने शरीरतन्त्र एवं मनस्तन्त्र से सहजरूपेणैव 'प्रकृतिस्थ' भी, पुरुषधा सर्वज्ञानक्रियापराशक्तिसम्पन्न होने से अपने बुद्धितन्त्र एवं भूतात्मतन्त्र से

महज्जरूपस्यैव 'रहस्य' भी, अतएव सर्वथैव परिपूर्ण भी मानव कैसे, किन कारणों से विप्रकारानुबन्धी युगधर्म्मों से अभिभूत होकर आज अपनी शारीरिक-मानसिक प्रकृतिस्वस्थता, एवं बौद्धिक-आत्मिक स्वस्थता खो बैठा ?, यह दुरधिगम्य, असमाधेयप्रश्नसमतुलित अटिलतमप्रश्न विगत-सुदूर-अनेक शताब्दियों से मानवीया प्रज्ञा का उत्पीड़क बनता चला आ रहा है। क्या मानवीय प्रज्ञा ने इस प्रश्न का यथार्थ व सफल समाधान प्राप्त किया ?, यही यह समसामयिक महान् प्रतिप्रश्न है, जिसके याथातथ्य-अनुरूप-समन्वय किए बिना अपावरमणीय-युगधर्म्मभावुकतानुगत-अन्यान्य-प्रयत्नसहस्रों से भी न तो मानवीय भूत (शरीर) का समस्या का ही निराकरण सम्भव है, न प्रज्ञा (मन) क्षोभ की निवृत्ति ही सम्भव है, न मति (बुद्धि) विभ्रम का पलायन ही शक्य है, एवं सर्वोपरि न चिद्भाव (आत्मा) का सहज अनुग्रह ही सम्भव है।

किस देश की कौन सी मानवीय प्रज्ञा ने इस अविमर्शनात्मक प्रतिप्रश्न का क्या समाधान किया ?, किया कर रहा ?, एवं करेगी ?, इन अवान्तर प्रश्नों की यातयाम मीमांसाओं में हमें अपने आपको क्योंकि यातयाम बना लेना अभीष्ट नहीं है, दूसरे शब्दों में स्वरूपज्ञानप्रतिबन्धिका अन्तर्वा श्रीवा लोकैषणा के व्यामोहन में लक्ष्यहीन बन जाना क्योंकि हमें श्रेयःपन्था प्रतीत नहीं हो रहा। अतएव दो शब्दों में हम भारतदेशीय महामहिम प्रज्ञापराधभ्रममूर्त्ति महर्षि-मानवश्रेष्ठ की प्रकृति स्वभावानुगता स्वस्थप्रज्ञा से अनुप्राणित, एकान्तभ्रान्तिमूलक सर्वसंशयरहित, 'इदमित्थमेव नान्यथा' न्यायेन सर्वथा निर्णीत-निश्चित-सैद्धान्तिक-परमार्थ-समाधान को ही अपना लक्ष्य बना रहे हैं, जिस सैद्धान्तिक निर्व्याज समाधान का गुह्यतम (गुप्तरहस्य) 'मानवोक्थ्यनैराशिकप्राणीय' नाम की आप-अभिधा के अन्तराल में ही पिनद्ध (अन्तर्गर्भितरूप से सुरक्षित) है।

(६) 'मानव' अभिधा का स्वरूपपरिचय—

उक्त अभिधावाक्य के 'मानव-उक्थ्य-नैराशिक-प्राणीय' ये चार स्वतन्त्र पद हैं, जिनका प्रत्येक का अपना अपना स्वतन्त्र रहस्यपूर्ण इतिहास है जिस के सर्वाङ्गीण बोध के अनन्तर ही इस अभिधा के पिनद्ध रहस्य का उद्घाटन सम्भव है। जिस महाविद्या के द्वारा इस रहस्य का विश्लेषण हुआ है वही विद्या 'प्राजापत्यविद्या' कहलाई है, जिसका अनुपद में ही संकेत किया जा रहा है। चतुष्पदा अभिधा का प्रथम पद 'मानव' है, जिसका 'मनु' से सम्बन्ध है। रहस्यपूर्ण 'मनु' तत्त्व की पूर्ण अभिव्यक्ति का ही नाम 'मानव' है।

स्वायम्भुवमात्मक-त्रैलोक्यत्रिलोकीरूप-सप्त व्याहृतिलक्षण विराट् विश्व के केन्द्रीभूत, विश्वनभ्य, विश्वसम्पालक, सर्वज्ञान क्रिया-अर्थ-शक्तित्रयमूर्त्ति विश्वेश्वरप्रजापति का ही नाम 'मनु' है जिस मनु का सर्वाग्रणी होने से 'अग्नि' नाम से, प्रजापालक होने से 'प्रजापति' नाम से, विराड्ज्योतिर्मय होने से 'इन्द्र' नाम से, सर्वविश्वक्रिया के सञ्चालक होने से 'प्राण' नाम

कि विश्वप्रजापति की विराट्संस्था में परिपूर्णत्वानुबन्धी जो भी भाव हैं, व सब उसी क्रमसंस्थान रूप से मानव में भी ज्यों के त्यों अभिव्यक्त हैं। इसी आधार पर 'अहं ब्रह्मास्मि' लक्षण वेदान्त सिद्धान्त स्थापित हुआ है। अव्ययी-ऋष्य-रूप मनुप्रजापति की स्वतन्त्राभिव्यक्ति ही मानव की स्वस्वरूपाभिव्यक्ति है जिसका निष्कर्षार्थ है—'मनु मानव से अभिन्न है, मनु ही मानव है, किंवा मानव साक्षात् मनु ही है ×।

(७)—मानव की मानवता का मूलाधार—

शाश्वतब्रह्मलक्षण, अतएव अमृतभावापन्न मनुप्रजाति का श्रेष्ठतम मानवपुत्र 'अमृतस्य पुत्रा अमृम' रूप से अमृतपुत्र है, शाश्वतब्रह्मसमनुक्षित बनता हुआ अपनी आत्माभिव्यक्ति से परिपूर्ण है। ऐसे मानव के मूल अव्ययभूत मनु की यही रहस्यपूर्णा परिभाषा मनुतत्त्ववेत्ता, अतएव यशो-नामानुबन्धिनी परम्परा के आधार पर 'मनु' नाम से ही प्रसिद्ध हो जाने वाले मानवधर्मप्रवर्त्तक एतद्देशीय संस्कृति-सभ्यताप्रवर्त्तक राजर्षि मनु ने निम्नलिखित शब्दों में अभिव्यक्त की है—

आत्मैव देवता सर्वा, सर्वमात्मन्यवस्थितम् ॥
आत्मा हि जनयत्येषां कर्म्मयोग शरीरिणाम् ॥१॥

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ॥
रुक्माभ स्वप्नधीगम्य तं विद्यात् पुरुषं परम् ॥२॥

एतमके वदन्त्यग्निं,मनुमन्ये प्रजापतिम् ॥
इन्द्रमके, परे प्राणं, मपरे ब्रह्मशाश्वतम् ॥३॥

एष सर्वाणि भूतानि पञ्चभिर्व्याप्य मूर्त्तिभिः ॥
जन्म-वृद्धि-क्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत् ॥४॥

—मनु १२ अ०।

मानव के स्वतन्त्र आत्मकेन्द्ररूप मनु को आधार बनाकर ही हमें 'मानव' की परिपूर्णता का समन्वय करना है। क्यों कि, एकमात्र मनुरूप इस तत्त्व ही मानव को इतर प्राणिवर्ग से विभिन्न प्रमाणित करने की क्षमता रखता है। जिन तीन सर्गोंका पूर्व में दिग्दर्शन कराया जाचुका है, उन

×—अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्र ।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जे ऽहं कविरुशना पश्यता मा ॥
ऋक्संहिता ४।२६।१।

में भी प्राकृतिक वे सब तत्व विद्यमान हैं, जोकि मानव में हैं। अन्तर (स्वानुभवैकगम्य) स्वभाव (स्वभोगनिर्णय) परपुरुष (आत्मानुभव) [illegible] की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति में ही है, जिसने मानव को प्राकृतसर्गोपजीवी से पृथक् है। केन्द्रानुगत आत्मस्वरूपाभिव्यक्तित्व ही मानव का वह असाधारण (विशेष है, जिसने मानव को परिपूर्ण बना दिया है। आत्ममनु के अतिरिक्त प्राकृतिक बुद्धि–मन–शरीर–इन तीन तन्त्रों के माध्यम से तो मानव और इतर प्राणियों में कोई नहीं है। अतएव बुद्धिमानी मानव का विशेषलक्षण नहीं है, मनस्विता विशेष लक्षण शरीरकर्मानुगति विशेष लक्षण नहीं है। क्योंकि इन तीनों तन्त्रों में तो सभी समान हैं। केवल आत्ममनु में है। मानवेतरों में जहाँ आत्ममनु का रश्मिरूप से अनुगमन है, वहाँ [illegible] आत्ममनु स्वानुगत पूर्ण व्यवस्था से अभिव्यक्त है। इस 'आत्ममनु' (आत्मा) को केन्द्रबिन्दु बना कर राजर्षि ने प्रजापति की प्रजा के जो भेदविभाजन किए हैं, उनसे भी यह स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है कि, शरीर, मन, बुद्धि, तीनों ही मानव की मानवता के मापदण्ड बनने में सर्वथा असमर्थ हैं। एकमात्र तुरीय आत्मा, किंवा आत्ममनु ही मानव की मानवता का सूत्राधार बन सकता है, बन रहा है।

(८)–प्रथमसर्गनिबन्धना प्रकृति के प्रति मानव का व्यामोहन—

पशुसर्ग की अमुक प्राकृतिक विशेषताओं के व्यामोहन में व्यामुग्ध बन जाने वाले कतिपय प्राकृतिक मानव अपने मूल स्वयम्भू आत्ममनुस्वरूप से अपरिचित रहते हुए 'बुद्धि' को ही मानव का मापदण्ड घोषित करने लगते हैं। उद्बोधन मात्र कर ही देना चाहिए अतएव व्याम- [illegible] धत मणीविभाग के माध्यम से अपने तथाभूत व्यामोहन से इस पात्र प्राकृत मानव को। सम्पूर्ण भूतभौतिक प्रपञ्च को आरम्भ में जड़ और चेतन, इन दो भागों में विभक्त माना जा सकता है। निरिन्द्रिय, अतएव निष्क्रिय अतएव अचेतन भूतवर्ग प्रथम जड़सर्ग है। इसकी अपेक्षा सेन्द्रिय सक्रिय चेतन 'प्राणी'नामक वर्ग इसलिए श्रेष्ठ माना जायगा कि, इसमें भूतवर्गपदार्थों की भाँति केवल शरीर ही शरीर नहीं है। अपितु शरीर के साथ साथ यहाँ 'मन' भी अभिव्यक्त है। कृमि–कीट–पक्षी–पशु–इन चारप्रकार के मनोजीवी प्राणियों में से कुछ एक विशेष प्राणी चारों वर्गों में ही (अश्व-गजादि) ऐसे भी हैं जिनमें मन की अभिव्यक्ति के साथ साथ थोड़ी बुद्धि भी अभिव्यक्त रहती। अतएव ऐसे हैं विशेष कृमीकीटादि प्राणियों को 'बुद्धिजीवी' माना जायगा, एवं इन्हें केवल मनोजीवी कृमिकीटादिप्राणियों की अपेक्षा श्रेष्ठ कहा जायगा। और इस प्रकार शरीरमात्रोपजीवी जड़भूतवर्ग से श्रेष्ठ प्रमाणित होने वाले प्राणियों में मनोजीवीप्राणी, बुद्धिजीवीप्राणी, ये अवान्तर दो वर्ग हो जायँगे। यहाँ आकर प्राणीवर्ग विश्रान्त हो जायगा। एवं यहीं आकर यह प्रश्न उपस्थित होगा कि,—

(९)—प्रजापति के चतुर्विध प्रजासर्ग—

क्या मानव 'प्राणी' नहीं है ? । प्रश्न का उत्तर होगा शरीर-मनो-बुद्धिधर्म्मामात्र मानवों के लिए 'हाँ', एवं आत्मधर्म्मा मानवों के लिए-'ना'। क्योंकि राजर्षि मनु ने मानवों का स्थान बुद्धिजीवी प्राणी से श्रेष्ठ बतलाया है । बुद्धिमत्ता मानवता की व्यवस्थापिका नहीं है, अपितु आत्मस्वरूपाभिव्यक्ति ही मानव की मानवता है, यही तात्पर्य है । लक्ष्य बनाइए मनु की निम्न लिखित सूक्ति को, एवं तदाधारेण वर्गचतुष्टयी का समन्वय कीजिए-

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः, प्राणिनां बुद्धिजीविनः ।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठाः—

—मनु

१—जड़भूतवर्ग	— केवलशरीरजीवी	— सामान्यवर्ग (भूतानि,-भूतानां)
२—कृमिकीटपक्षिपशुवर्गः	— मनोजीवी	— पूर्वापेक्षया श्रेष्ठ (प्राणिनः-श्रेष्ठाः - प्राणिनां)
३—वानरगजाश्वादिवर्ग	— बुद्धिजीवी	— पूर्वापेक्षया श्रेष्ठ (बुद्धिजीविनः - श्रेष्ठाः) बुद्धिमत्सु
४—मानववर्ग	— आत्मजीवी	— पूर्वापेक्षया श्रेष्ठ (नराः श्रेष्ठाः)

—०—

१—शारीरिकजीवाः	— जड़भूतानि	— लोष्ठादयः	— भूतम्	प्राजापत्यसर्गत्रयी
२—मानसिकजीवाः	— मनोजीविनः	— पश्वादयः	— पशुः	
३—बौद्धिकजीवाः	— बुद्धिजीविनः	— पश्वादयः		
४—आत्मिकजीवाः	— आत्मजीविनः	— मानवाः	— नरः	

—— ——

(१०) बुद्धिजीवी पशु के माध्यम से मानव का बुद्धिविभ्रम—

हाँ तो बुद्धिमानी मानवस्वरूप की व्यवस्थापिका नहीं है । एवं बुद्धिशिरोमणि भी मानव पशुकोटि में ही अन्तर्भुक्त मान जायेंगे जिनकी बुद्धि मानवीय स्वरूपात्मक हृदयस्थ आत्ममनु के स्वरूपबोध में उपयुक्त न होकर केवल बुद्धिजीवी पशुओं की भाँति अपने बुद्धि-मन-शरीर-भावों की तृप्ति-तुष्टि-पुष्टि में ही संलग्न बनी रहती है । अतएव एवं बुद्धिपरपारगामी साम्राज्यवाद बुद्धिमात्रोपजीवी भी मानव आत्मस्वरूपबोधशून्य बने रहते हुए आत्मानुगता शान्ति-स्वस्थता से

मानव अपने शरीरादि सर्व पर्वों से तभी प्रकृतिस्थ एवं स्वस्थ बन सकेगा, तभी इसकी परिपूर्ण 'मानव' अभिधा अन्वर्थ बन सकेगी, जब कि यह अपने मौलिक-स्वरूपभूत हृदयस्थ आत्ममनु के साथ अपने शरीर-मनो-बुद्धितन्त्रों के सहजसिद्ध अन्तर्य्याम सम्बन्ध को प्राजापत्यशास्त्रानुप्राणित विद्याबुद्धि-रूप बुद्धियोग के माध्यम से अभिव्यक्त कर लेगा। इस अभिव्यक्ति के द्वारा ही परिपूर्ण आत्ममनु-(हृत्य प्रजापति) के अनुग्रह से परिगृहीत बुद्धि-मन-शरीर तन्त्र भी सर्वात्मना प्रकृतिस्थ बन जाते हैं जो प्रकृतिस्थता ही इन तीनों तन्त्रों की परिपूर्णता है। फलस्वरूप अपने आत्मतन्त्र से परिपूर्ण, अतएव बुद्धि-मन-शरीर-तन्त्रों से भी परिपूर्ण मानव ही मानव अभिधा को चरितार्थ कर सकता है। निष्कर्षत: मानवअभिधा की परिपूर्णता का 'आत्म-बुद्धि-मन -शरीर-परिपूर्णत्वमेव मानवत्वम्' इस लक्षण पर ही पर्य्यवसान है।

(१२)—मानवस्वरूपानुबन्धी एक सामयिक प्रश्न, और तत्समाधान—

जैसा कि स्पष्ट किया गया है, मनु ने प्रजापतिसर्ग के चार विभाग किये हैं, जिनमें अन्तिम श्रेष्ठतम विभाग 'मानव' ही है जो 'बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठाः' इन शब्दों में 'नर' नाम से प्रसिद्ध है। भगवान् बादरायण (कृष्णद्वैपायन व्यास) के द्वारा भी 'गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि-नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्' (महाभारत) इत्यादि रूप से मानव का ही श्रेष्ठत्व स्वीकृत हुआ है। क्या स्वयं मानववर्ग में अवान्तर श्रेणिविभाग नहीं है? यही वह एक सामयिक प्रश्न है, जिसका प्रासङ्गिक समाधान अनिवार्य्यकोटि में प्रविष्ट हो रहा है। सम्पूर्ण विश्व का मानवमात्र मनुसिद्ध आत्मस्वरूपाभिव्यक्ति के कारण समानरूप से श्रेष्ठ है, इसमें तो कोई सन्देह नहीं। अवश्य ही आत्माभिव्यक्तित्व से शून्य पशवादि प्राणियों के समतुलन में मानव श्रेष्ठ है, 'आर्य्य' है। इसी सामान्य अनुबन्ध के माध्यम से प्राजापत्यशास्त्र का 'कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम्' यह उद्घोष व्यक्त भी हुआ है। किन्तु जहाँ तक प्राजापत्यशास्त्र का सम्बन्ध है, वहाँ तक तो भारतदेशीय मानव में ही प्रकृतिसिद्ध कुछ ऐसे सहज वर्गभेद हैं, जिनकी प्राकृतिक स्थिति की कोई भी प्रकृतिवादी उपेक्षा-अवहेलना नहीं कर सकता।

प्राजापत्यशास्त्रनिबन्धन वही भारतदेशीय वर्गभेद (१) जन्मान्तरीयविद्यासंस्कारात्मकसम्बन्ध, (२) प्राजापत्यशास्त्रस्वाध्याय (३) शास्त्रशास्त्रानुगतबुद्धिगम्यतत्त्वानुगमन, ४) ज्ञानतत्त्वाधारेण सहज होने वाला आचरण (५) आचरणान्तर पूर्णरूपेण अभिव्यक्त हो जाने वाली भावी स्थिति इन पाँच स्थितियों के कारण पञ्चधा विभक्त हो जाता है जिन इन पाँचों वर्गभेदों का लोकसम्प्रदायों में जहाँ 'मनुज, मनुष्य, मानुष, मानव, पुरुष' अभिधाओं से व्यवहार किया गया है वहाँ इन्हें ही प्राजापत्यशास्त्रपरिभाषा में 'मानस्य विद्वान्-कृतबुद्धि-कर्त्ता-ब्रह्मवादी' इन नामों से समन्वित माना गया है। बड़ा ही रहस्यपूर्ण है इन मनुजमानव, मनुष्यविद्वान्, मानुषकृतबुद्धि,

तदित्थं, इस अवान्तर वर्गभेद की दृष्टि से अब हम परम्परासिद्ध प्राजापत्यसर्गनिरूपण पराविभाग का सम्भूय नवधा वर्गीकरण मान सकते हैं, जिनमें आरम्भके तीन वर्ग आत्मस्वरूपाभि व्यक्तित्व से पृथक् रहते हुए जहाँ यथाभाव प्राकृतवर्ग हैं, वहाँ ऊपर के षड्वर्ग आत्माभिव्यक्तित्व के कारण स्वतन्त्र व्यष्टिकेन्द्र से सम्बन्धित होते हुए परिपूर्ण हैं। तात्त्विकमाध्यम से समन्वय कीजिए इस नवधावर्गभक्तिमीमांसाका, एवं तदाधार पर ही प्रक्रान्ता 'मानव' अभिधा का समन्वय कीजिए—

सैषा प्रजापत्यनुगता नवसर्गतालिका

—'नवो नवो भवति जायमान'—इत्याचार्य्या आहुः

वर्ग				
१—शरीरमात्रोपजीवी-वर्ग	— अज्ञमात्रा	(३)—भूतानि,भूतानां		प्राकृतसर्गत्रिवर्ग
२—मनोजीवी-वर्ग	— सामान्यपरपाश्व	(२)—प्राणिन श्रेष्ठा		
३—बुद्धिजीवी-वर्ग	— बुद्धिमन्त परपाश्व	(१)—प्राणिनां बुद्धिजीविन श्रेष्ठा		
४—आत्मजीवी-वर्ग	— नर	(६) — बुद्धिमत्सु नरा: श्रेष्ठा:		आत्माभिव्यक्तिरूपा—षड्वर्ग
५—आत्मानुगामी-वर्ग	— मनुष	(५) — नरेषु ब्राह्मणा: श्रेष्ठा		
६—आत्मभुस्त्यनुगामी-वर्ग	— मनुष्य.	(४) — ब्राह्मणेषु विद्वांस श्रेष्ठा		
७—आत्मतत्त्वानुगामी-वर्ग:	— मानुष	(३) — विद्वत्सु कृतबुद्धय श्रेष्ठा		
८—आत्मविश्वासानुगामी-वर्ग	— मानव	(२) — कृतबुद्धिषु कर्त्तार श्रेष्ठा		
९—आत्मनिष्ठवर्ग	— पुरुष	(१) — कर्त्तृषु ब्रह्मवेदिन श्रेष्ठा:		

(१२)—क्रमसिद्धा 'उक्थ' अभिधा का स्वरूपदिग्दर्शन—

'मानवोक्थवैराजिकमर्यादा' नाम की प्रथमा 'मानव' अभिधा के स्वरूपदिग्दर्शन के अनन्तर 'उक्थ' अभिधा की ओर हमारा ध्यान आकर्षित हो रहा है। केन्द्रानुप्राणित हृदयस्थ उस मूलकेन्द्र का ही नाम 'उक्थ' है, जहाँ से चारों ओर परिमण्डल बनाती हुई विविध शक्तिरूपा रश्मियाँ विनिर्गत होती रहती हैं। समस्त शक्तिपुञ्ज का मूलप्रतिष्ठात्मक मूलस्रोतरूप केन्द्रबिन्दु ही 'उक्थ' है, जो इस आत्ममनु का ही अभिव्यक्त स्वरूप है। शरीर और मन से प्रकृतिस्थ बना रहता हुआ, एवं बुद्ध्या तथा भूतात्मना स्वस्थता को मूलप्रतिष्ठा मानता हुआ मानव यदि मानव के (अपने आपके) इस उक्थ को सतत बनाए रखता है, तो इस की प्रज्ञा सम्पूर्ण समस्याविष

परिग्रहलक्षणयुक्त मर्य्यादारूप भोग्यपरिग्रह तीनों का सामञ्जस्य ही उक्थवैराजिकमर्यादारूप मानव का स्वरूपसंरक्षक है। अतएव प्रत्येक मानव को स्वस्वरूपसंरक्षण-परिग्रह न विकास के लिए अपने उक्थ-वैराजिक-मर्य्यादा इन तीनों का अनियाय्यरूपेण स्वरूपबोध प्राप्त कर ही लेना चाहिए है। हम क्या हैं ?, प्रश्न का उत्तर उक्थस्वरूपबोध ही पर अवलम्बित है। हमारा शक्तिप्रयोगक्षेत्र किस सीमापर्य्यन्त व्याप्त है ?, प्रश्न का उत्तर वैराजिकस्वरूपबोध पर ही अवलम्बित है। एवं हम किन किन साधन-परिग्रह भोग्य भावों के द्वारा अपनी शक्तियाँ सुरक्षित रखते हुए अपने स्वरूप को अक्षुण्ण बनाए रख सकते हैं ? प्रश्न का उत्तर मर्य्यादास्वरूपबोध पर ही अवलम्बित है। तीनों के स्वरूपबोधाधार पर ही 'मानव' अभिधा अवलम्बित है। अन्यथा मानव और पशु में कोई विभेद नहीं है। अतएव आरम्भ में ही हमें यह आवेदन कर देना पड़ा है कि, 'मानव' की परिपूर्णता का गुप्त रहस्य 'मानवोक्थवैराजिकमर्य्यादा' वाक्यसन्दर्भ के गर्भ में ही पिनद्ध है।

(१६)—मानव, और मानवाश्रम—

जिस पिनद्ध-गर्भीभूत आधार की प्राजापत्या अभिधा-'मानवोक्थवैराजिकमर्यादा' है उसी अभिधा की लोकसंज्ञा 'मानवाश्रम' है। उक्थ-वैराजिक-एवं मर्य्यादा, तीनों अभिधाओं के द्वारा क्रमशः भूतात्मा बुद्धि, शरीरानुगत मन व मानवीय पव सङ्केतित हैं। मानव का केन्द्रीभूत भूतात्मा ही मानव का 'उक्थ' है मानव की सार्वी बुद्धि ही मानव का वैराजिकमण्डल (रश्मिरूप वितानमण्डल) है, एवं मानव का शरीरानुगत चाग्र मन ही (अशीतिरूप वासना-भावना संस्कार रूप आयतन से) मानव का मर्य्यादारूप मर्य्यादा है। 'मानव' शब्द मानव की मूल अभिधा है, एवं उक्थ-वैराजिक-मर्य्यादा-य तीन शब्द मानव शब्द की तूल अभिधाएँ हैं। दूसरे शब्दों में 'मानव' क्या है ? प्रश्न का समाधानव्याख्या ही 'उक्थ-वैराजिक-मर्य्यादा' है। उक्थरूप आत्मसर्व, बुद्धिरूप वैराजिकपर्व एवं मर्य्यादा-रूप शरीरानुगत मन पर्व य जिस स्वरूपमें परिपूर्णरूपेण समन्वित रहते हों वही 'मानव' है। एवंविध परिपूर्ण मानव की परिपूर्णता का संरक्षण, दूसरे शब्दों में मानव के उक्थ-वैराजिक-मर्य्यादारूप-पर्वों का सम-समन्वय श्रम-परिश्रम-गर्भित आश्रमनिष्ठा पर ही अवलम्बित है, जिसके कि तात्त्विक स्वरूप की आज के युग में सर्वात्मना अभिभूति ही हो रही है।

शरीरानुगत मानसिक श्रम को ही 'श्रम' कहा गया है। मनाऽनुगत बाद्धिक श्रम को ही 'परिश्रम' माना गया है एवं मानसिक श्रमगर्भित बौद्धिक परिश्रम का अनुगामी आत्मस्वरूप बोधापयिक नैष्ठिक श्रम ही 'आश्रम' नाम से प्रसिद्ध हुआ है। शरीरान्द्रमार्गों से समन्वित इन्द्रियाप्यक मन के द्वारा सञ्चालित रहने वाला श्रम एक प्रकार का शारीरिक श्रम ही है जिसके आधार पर 'श्रमजीवी' शब्द प्रतिष्ठित है। इस श्रम का चाञ्चल्यमय एक भावों से ही सम्बन्ध है।

१—प्रवर्ग्यानुगत श्रम (पार्थिव – अपानप्राणानुगत – शारीरिकश्रम – श्रम
२—परिध्यनुगत श्रम (सौर – प्राणप्राणानुगत – बौद्धिकश्रम – परिश्रम
३—केन्द्रानुगत श्रम (स्वायम्भुव– व्यानप्राणानुगत – आत्मिकश्रम – आश्रम

—०—

१—अङ्गश्रम – अवयवश्रम – अङ्गानां पुष्टितुष्टिश्च-अनःशरीरनिबन्धना – श्रममूला
*२—कृत्स्नश्रम – पूर्णश्रम – एकस्य तृप्तिः –बुद्धिनिबन्धना – परिश्रममूला
३—सर्वश्रम – सर्वश्रम – सर्वस्य शान्तिः – आत्मनिबन्धना – आश्रममूला

—०—

(१७) आश्रमारूढ महामानव की महदुक्थनिष्ठा—

जिस मनुरूक्थभूत आत्मकेन्द्रबिन्दु को स्वमूलप्रतिष्ठा बना कर मानव जिस वश्यवैराजिक-अङ्गोपसमन्वयलक्षण-शान्ति-तृप्ति-तुष्टि-पुष्टि-प्रवर्त्तिका प्राजापत्यवरूक्थनिष्ठा के माध्यम से आत्मोपयिक सर्वतोभावी श्रम करता है, वही मानव का 'आश्रम' है, जिस आश्रम में सफल बन जाने वाला मानवश्रेष्ठ ही 'महावशातमभूर्त्ति' कहा जाय है। एवंविधा प्राजापत्या जो महदुक्थनिष्ठा चिरकाल से अन्तर्मुख बनी हुई थी, वह उसी मनुप्रजापति की अमरशाता–असकृष्णा–अप्रतवर्य्या–अनिर्देश्या–सवत प्रसुप्ता इव केन्द्रानुगता मनोमयी प्रेरणा के अनुग्रह से अनुमानत विगत एक शताब्दी के आरम्भ में एक वैसे ही आश्रमनिष्ठ-प्रजापत्तवातश्रममूर्त्ति महामानव के अनपथ हृदय में स्वयंख्याति स्वरूप से प्रादुर्भूत हो पड़ी, जिसका मूलस्वरूप एक शताब्दी के अवसानात्मक वत्तमान क्षण में रवेतक्रान्ति के प्रस्तुत घोषणापत्र के द्वारा विश्वमानव के उद्बोधन के लिए अभिव्यक्त होने जा रहा है। प्राजापत्यमहदुक्थ के इस पुनराविर्भाव से सम्बद्ध उस अलौकिक घटना के लोकस्वरूप का निम्न लिखित शब्दों में यों दिग्दर्शन कराया जा सकता है।

वैराजिकअङ्गोपधिमूर्तिलक्षण-नित्य-अमूल-अलौकिक अपौरुषेय 'प्राजापत्यमहदुक्थशास्त्र' (वेदशास्त्र) की मूलभावानुबन्धिनी लोकस्वरूपाभिव्यक्ति के लिए जिस वाङ्मय (शब्दमय) पौरुषेय प्राजापत्यवरशास्त्र का अतीतानागतज्ञ, विदितवेदितव्य, अधिगतयाथातथ्य तपःपूत महामहर्षियों के द्वारा अनपथ अन्तःकरण में स्वयम्भूप्रजापति की प्रेरणा से आविर्भाव हुआ था, वह विगत महाप्रलयावधि के अन्तराल से मुक्त तथा प्रक्रान्त पूर्वावर्त्तित नवमहमाहात्म्य सीमित साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के कारण दुर्भाग्यवश अन्तर्मुख ही बन गया था।

प्राजापत्यशास्त्र के प्रथमद्रष्टा तथा स्रष्टा वेदमूर्ति भगवान् चतुर्मुख ब्रह्मा के प्रसादगुण

*एकस्य अपेक्षता–कृत्स्नता, (कात्स्न्यम्–पूरा)। अनपायगता–सर्वता–(सार्व्यम्–सब)

यद्वेदविद्वासस्तुविभिः स वेदान् विज्ञानतश्च प्रमिमज्य तद्भु ॥
विज्ञानभेदान् दधो देवलोके पुरा प्रसिद्धान् यततर्डमिनेतुम् ॥२॥

—संशयतदुच्छेदवाद

वस्यवैराग्यिकरहस्योद्घाटक वेदविद्यावतार वेदवाचस्पति समीक्षाचक्रवर्ती परमभट्ट य स्व० श्रीश्रीमधुसूदनप्राचार्य्यचरणाभिध स्वम्योतिस्वरूप उस महापुरुष न ईश्वरप्रदत्त सहज प्रतिभा के बल पर महदुक्थरूप, भतएव परिपूर्ण प्राज्ञापत्यवेदशास्त्र का विराट्क्षत्रावधिपर्य्यन्त प्रकृत्य रहने वाली भाम्मनिष्ठा से (चालीस वर्षों की स्वाध्यायनिष्ठा से) हीरकाभिर भिभिक्षतणा वैदिक रश्मियों से अन्तस्तलपर्य्यन्त निखनन कर तद्द्वारा अद्भुत अभूतपूर्व लोकोत्तर उस वैराग्यिक तत्त्ववाद का पुनराविर्भाव कर ही तो डाला, जिसके माध्यम से उस महापुरुष के भाविर्भावकाल से अनुमानतः एक शताब्दी के अव्यवहितोत्तरकाल में ही 'अग्निर्जागार' मूला प्राज्ञापत्या आर्यनिष्ठा के उपोद्बलक विश्वमानवोद्बोधन के लिए श्वेतक्रान्ति का महान् सन्देश समुपस्थित होने वाला था, जिस श्वेतक्रान्ति-सन्देश का प्रथमवार पाँचसहस्रवर्ष पूर्व घटित होने वाली रक्तक्रान्ति के आरम्भ में भगवान मधुसूदन वासुदेव श्रीकृष्ण के द्वारा शङ्खध्वनिपूर्वक निनाद हुआ था, जैसा कि निम्न लिखित वचन से प्रमाणित है—

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ॥

—गीता

"सवर्ग-परिमर-पर्य्यङ्क-अभिप्लव-उद्गीथ-श्वैतनौधस-पृष्ठ-उक्थ-अर्क-मरीचि छन्दोमा-पारावत-अपटूक्कार-गायत्री-सावित्री अदिति-दिति-सागराम्बरा-मही-विश्वव्यचा-प्रणव-हिङ्कार-ग्रह-स्तोम-उषा-निधन हिङ्कार-आम्भृणी-इन्द्र-वरुण-मातरिश्वा-नाभानेदिष्ठ-वालखिल्या-वृषाकपि-मातरिश्वा-एमूष प्रणव-सरस्वान्"—आदि आदि सहस्रों शब्दों की रहस्यपूर्ण जो अवगरिमा, जो वैज्ञानिक समन्वय सहस्राब्दियों से परोक्ष था, वह उस महापुरुष के द्वारा गद्य-पद्यात्मक संस्कृतभाषा में स्वतन्त्र मौलिक २८८ दोसौ अट्ठासी ग्रन्थों में उपनिबद्ध हुआ, जिस इस प्राज्ञापत्या विज्ञाननिधि को सवतन्त्रस्वतन्त्र भारतराष्ट्र की सर्वाधिकमहत्त्वानुगता अमूल्यनिधि माना जा सकता है। यदि हमारे आज के राष्ट्रीय सत्ताप्राङ्गण में एक भी ऐसा महाप्राण सांस्कृतिक भाव व्यक्ति होगा जिसे कि कभी घुणाक्षरन्याय से भी इस मूलनिधि का अंशतः भी परिचय प्राप्त करने का सामान्य प्रसङ्ग हो जायगा, तो अवश्य ही वह प्रज्ञान समस्त आवश्यक योजनाओं में इसी योजना को प्रमुख स्थान दिलवाने के लिए बद्धपरिकर हो जायगा, जिसके कि अन्वेषण में विगत अनेक वर्षों से हम प्रयत्नशील हैं।

५—उपनिषद्विज्ञानभाष्यभूमिका द्वितीयखण्ड		७००
६— ,, तृतीयखण्ड		७००
७—केनोपनिषद्विज्ञानभाष्य		५००
८—कठोपनिषद्विज्ञानभाष्य		६००
९—प्रश्नोपनिषद्विज्ञानभाष्य		५००
१०—मुण्डकोपनिषद्विज्ञानभाष्य		५००
११—माण्डूक्योपनिषद्विज्ञानभाष्य		३००
१२—तैत्तिरीयोपनिषद्विज्ञानभाष्य		५००
१३—ऐतरेयोपनिषद्विज्ञानभाष्य		४००
१४—छान्दोग्योपनिषद्विज्ञानभाष्य		१०००
१५—मैत्रायण्युपनिषद्विज्ञानभाष्य		५००
१६—कौषीतक्युपनिषद्विज्ञानभाष्य		५००
१७—श्वेताश्वतरोपनिषद्विज्ञानभाष्य		५००
१८—बृहज्जाबालोपनिषद्विज्ञानभाष्य		५००
१९—गीताविज्ञानभाष्यभूमिका-बहिरङ्गपरीक्षा-प्रथमखण्ड		६००
२०— ,,	आत्मपरीक्षा २ खण्ड 'क' विभाग	५००
२१— ,,	ब्रह्मकर्म्मपरीक्षा ,, 'ख' विभाग	६००
२२— ,,	कर्म्मयोगपरीक्षा ,, 'ग' विभाग	६००
२३— ,,	ज्ञानयोगपरीक्षा ,, 'घ' विभाग	५००
२४— ,,	भक्तियोगपरीक्षा सर्वान्तरतमपरीक्षात्मकपूर्वखण्ड 'क'	८०००
२५— ,,	,, ,, उत्तरखण्ड 'ख'	८००
२६— ,,	बुद्धियोगपरीक्षा ,, पूर्वखण्ड 'ग'	८००
२७— ,,	,, ,, उत्तरखण्ड 'घ'	८००
२८—गीताहृदयरहस्य		५००
२९—परात्परहृदयरहस्य		५००
३०—पुरुषहृदयरहस्य		५००
३१—सत्यहृदयरहस्य		५००
३२—ईश्वरहृदयरहस्य		५००
३३—भविष्यहृदयरहस्य		५००
३४—ज्योतिहृदयरहस्य		५००
३५—परमेष्ठीहृदयरहस्य		५००

यश्रेतिहाससस्तुतिभिः स वेदान् विज्ञानतश्च प्रमिमज्य तेपु ॥
विज्ञानभेदान् दश देवलोके पुरा प्रसिद्धान् यततेऽभिनेतुम् ॥३॥
—संशयतदुच्छेदवाद

उक्थवैराजिकरहस्योद्घाटक वेदविद्याववार वेदवाचस्पति ममीक्षाचक्रवर्त्ती परमश्रद्धेय स्व० श्रीमीमधुसूदनआचार्य्यचरणाभिध स्वम्योतिस्वरूप उस महापुरुष ने ईश्वरप्रदत्त सहज प्रतिभा के बल पर महदुक्थस्वरूप, अतएव परिपूर्ण प्राजापत्यवेदशास्त्र का विराट्कालावधिपर्य्यन्त प्रक्रान्त रहने वाली आगमनिष्ठा से (चालीस वर्षों की स्वाध्यायनिष्ठा से) वीरणाभिर भिमिर्लक्षणा बौद्धिक रश्मियों से अन्तस्तलपर्य्यन्त निखनन कर तद्द्वारा अद्भुत अभूतपूर्व लोकोत्तर उस वैराजिक तत्त्ववाद का पुनराविर्भाव कर ही तो डाला, जिसके माध्यम से एक महापुरुष के आविर्भावकाल से अनुमानतः एक शताब्दी के अव्यवहितोत्तरकाल में ही 'अग्निर्जागार' मूला प्राजापत्या आर्पनिष्ठा के उपोद्बलक विश्वमानवोद्बोधन के लिए श्वेतक्रान्ति का महान् सन्देश समुपस्थित होने वाला था, जिस श्वेतक्रान्ति-सन्देश का प्रथमवार पाँचसहस्रवर्ष पूर्व घटित होने वाली रक्तक्रान्ति के आरम्भ में भगवान् मधुसूदन वासुदेव श्रीकृष्ण के द्वारा शङ्खध्वनिपूर्वक निनाद हुआ था, जैसा कि निम्न लिखित वचन से प्रमाणित है—

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ॥
—गीता

"सवर्ग-परिमर-पर्य्यङ्क-अभिप्लव-उद्गीथ-रथंतरनोधस-पृष्ठ्य-उक्थ-अर्क-अशीति छन्दोमा-पारावत-अपरच्छर-गायत्री-सावित्री-अदिति-दिति-सागराम्बरा-मही-विश्वव्यचा-प्रणव हिङ्कार-प्रह-स्तोम-उपा-निधन-हिङ्कार-आम्भृणी-इन्द्र-वरुण-मातरिश्वा-नामानदिष्ठ-वालखिल्या-वृषाकपि-मातरिश्वा-एमूष प्रणव-सरस्वान्"—आदि आदि सहस्रों शब्दों की रहस्यपूर्ण जो अपगारिमा जो वैज्ञानिक समन्वय सहस्राब्दियों से परोक्ष था, वह उक्त महापुरुष के द्वारा गद्य-पद्यात्मिका संस्कृतभाषा में स्वतन्त्र मौलिक २८८ दोसौ अट्टासी ग्रन्थों में उपनिबद्ध हुआ, जिस इस प्राजापत्या विज्ञाननिधि को सप्तवर्षग्रन्थतन्त्र भारतराष्ट्र की सर्वाधिकमहत्त्वानुगता अमूल्यनिधि माना जा सकता है। यदि हमारे आज के राष्ट्रीय सत्तामाध्यम में एक भी वैसा महाप्राण सांस्कृतिक आप स्थापित होगा जिसे कि कभी पुणारम्भावश भी इस मूलनिधि का संरक्षण भी परिचय प्राप्त करने का सामान्य प्राप्त हो जायगा, तो अपरय ही वह प्रमाणन समस्त आरम्भक योजनाओं में इसी योजना को प्रमुख स्थान दिलवाने के लिए बद्धपरिकर हो जायगा, जिसके कि क्रियण में विगत अनेक वर्षों से हम प्रयत्नशील हैं ।

६—अन्य—लेखपत्रात्मक साहित्य—अप्रकाशित—अनेक सहस्र पृष्ठात्मक

महर्षियों से ही सम्बद्ध है, सर्वोपरि सम्बद्ध है उस सत्तासन्द से, जो अपनी उदात्त घोषणाओं के माध्यम से आज 'राष्ट्रीयस्वातन्त्र्य' के मार्गविपथ पर आरूढ है।

(२०) वैराजिकवितानानुगत मानवोस्यर्थवैराजिकप्रमोद का आदान—

(मानवाश्रम का अरमालक्षणात्मक शिलान्यास)

आत्म–बुद्धि–मन–शरीर, इन चारों मानवीय स्वरूपपर्वों के समसमन्वय की आधारभूता मानवोस्यर्थवैराजिकप्रमोदमूला प्राजापत्यनिष्ठा के प्रतीकरूप पूर्वप्रदर्शित 'मानवाश्रम' के व्यावहारिक स्वरूप का अभिव्यक्ति–कामना से आज से अनुमानतः ६ वर्ष पूर्व भौतिक संस्थानात्मक एक वैसे मूल संस्थान का संकल्प जागरूक हो पड़ा जिसमें मानवीय आत्मा के उक्थस्वरूप चिन्तन के साथ साथ बुद्ध्यनुगत वैराजिक तत्त्वाधार, शरीरानुगत मानसिक प्रमोद भूताधार, दोनों का भी सहसमन्वय प्रक्रान्त हो। महआश्रमानुसार जिसमें मानवीय आत्मा, बुद्धि, मन, शरीर, चारों पर्वों की शान्ति–तुष्टि–पुष्टि–सृष्टि के प्रयत्नक–प्रवर्तक तत्त्वसम्मत आधारात्मक कर्तव्य व्यवस्थित हों। इसी महान् संकल्प को मूर्तरूप प्रदान करने के लिए आज से ६ वर्ष पूर्व अपने प्रमोदनात्मक (पैत्रिक) समस्त साधनपरिग्रह के सर्वसमर्पणमाध्यम से 'मानवाश्रम' नामक भौतिकसंस्थान का शिलान्यास हुआ।

अपने ही प्रमोदन की सर्वाहुति से मानवाश्रमरूप भौतिक 'उक्थ' तो आविर्भूत हो गया किन्तु अनुरूप अशीतियों की अनुपलब्धि के कारण अद्यावधि भी संकल्पानुसार इस उक्थ का आप्यायन न हो सका। यही नहीं, प्रमोदन, तथा प्रणय की रहस्यपूर्ण परिभाषा का विस्मृत कर इन पाने आज के अमुक युगमानवों ने इस 'मानवाश्रम–उक्थ' को आप्यायित करने के व्याज से इसे अपनी अशीति ही बनाने की आतुरता अभिव्यक्त की। यद्यपि हमारी जागरूकता से तादृश युगधर्माक्रान्त मानव अपने इस प्रयास में पूर्ण सफलता प्राप्त न कर सके तथापि स्वयं हमारी शारीरिक एवं तथा मानसिक शक्ति अवश्य ही इस संघर्ष ने जरामृत्युमग्रावन सुरक्षित बना डाली, जिस आज हमने अपनी प्राजापत्यवेदसेवा का पुरस्कार ही मान लिया है।

व्यावसायिक–व्यावहारिक–शास्त्रतान्त्रिक–मूलमौलिक–क्षेत्रात्मक संस्थानों के सम्बन्ध में लोकमानव किस प्रकार के संविधान अपेक्षित मानता है ?, प्रश्न के समाधान से तो हम अपरिचित हैं एवं अपरिचित ही रहना चाहते हैं। हां, जहां तक 'सांस्कृतिक महाक्षेत्र' का सम्बन्ध है वहाँ तक प्रक्रान्त रहने वाले संविधान तो सांस्कृतिक 'प्रमोदनात्मकवैराजिक' रूप प्राकृतिक विधानों को ही अपनी आधारभूमि बनाते आए हैं आरम्भ से ही। इनके सम्बन्ध में शास्त्रतान्त्रिकों की लोकप्रज्ञा से अनुप्राणित लौकिक मानिक विधिविधानों का प्रवेश तो सर्वथा निषिद्ध ही माना रहा है न्यूनतम इस संस्कृतिनिष्ठ भारतवर्ष में तो अवश्य ही।

अतएव श्वेतक्रान्ति के सन्देशप्रदाता मानवाश्रमके इस नवीन स्वर्गीयप्रवर्त्तक का यह सर्वथा सर्वात्मना अनिवार्य्य कर्त्तव्य हो जाता है कि वह इस दिशा में प्रतिक्षण जागरूक रहता हुआ ही मानवाश्रमोक्तस्वरूप महदुक्थ के आप्यायन से सम्बन्ध रखने वाली अशीतियों के लिए प्रयत्नशील बना रहे। क्योंकि लोकैषणा से सम्बन्ध रखने वाले वर्त्तमान तन्त्रों के संस्कृतिस्वरूपविरुद्ध सामान्य से भी विधि-विधान इस महदुक्थ को क्षणमात्र में अन्तर्मुख बना सकते हैं।

राष्ट्रीय संस्कृतिनिष्ठ मानवों के लिए यह विशेष तथ्य सर्वथा सर्वदा स्मरणीकरणीय है कि, भारतात्मस्वरूपनिबन्धन सांस्कृतिक संस्थान का संस्थापन, संस्संरक्षण, एवं तत्परिवर्द्धन तभी सम्भव है, जब कि इस का महदुक्थरूप मौलिक स्वरूप उक्थार्काशीतिसिद्धान्त के माध्यम से अर्चो-दनभाग के साथ समन्वित रहता है और जब कि इस को आप्यायनकर्त्री अर्चोदनरूपा अशीति अपवर्गभाव से सर्वथा असंस्पृष्ट रहती है। उक्थार्काशीतितत्त्व के आधार पर प्रतिष्ठित, अमोक्-माणाम्योऽन्यपरिग्रहलक्षण महद उक्थ का स्वरूपसंरक्षक अर्चोदन दुर्भाग्यवश जब भी कभी अवश्य रूप में परिणत हो जाता है, अथवा लो कर दिया जाता है, तभी महदुक्थात्मक सत्र का स्वरूप अन्तर्मुख बन जाता है। उक्थ अर्क अशीति के इस तात्त्विक प्राकृतिक रहस्यज्ञान से अपरिचित रहने वाले जनमानस ने जब जब भी अर्चोदनानुगत तथाविध सांस्कृतिक महदुक्थसंस्थान-केन्द्रों को लोकैषणा के व्यामोहन में आसक्त्यात्मक होकर अपवर्गस्वात्मिका अशीति बनाने की महती भ्रान्ति कर डाली है, तब तब ही वह संस्थान केन्द्रविच्युत होता हुआ अन्ततोगत्वा केवल अशीतिरूप से ही शेष रह गया है, और उस अवस्था किंवा दुरवस्था में संस्थानाख्य अपने मौलिक उद्देश्य से सर्वथा ही वञ्चित हो गया है। क्यों नहीं इस देश की सांस्कृतिक संस्था आज राष्ट्र के लिए सम्प्रदायवादनिरपेक्ष सर्वथा विशुद्ध मौलिक तत्त्ववाद का जीवनीय-आधारात्मक सर्जन कर रही ? प्रश्न का यही समाधान है।

सर्वस्वात्मक अर्चोदन के समर्पणमाध्यम से 'मानवाश्रम' नामक जिस भारतीयसंस्थान का आज से १ नववर्ष पूर्व शिलान्यास हुआ था, तन्मूलस्वरूपनिर्माणानुबन्धी आतिकशरीर के आधारात्मक स्वरूपनिर्माण में इस सुहृद् ने अपने जीवनीयरसप्रदानद्वारा संस्थान का मूलस्वरूप अभिव्यक्त करने का जो प्रयास यथाशक्ति प्रक्रान्त बनाए रक्खा है, उसमें इस अनगिनत दुःसह कष्टपरम्पराओं का स्वागत इसीलिए करना पड़ा है, पड़ रहा है कि, कहीं यह संस्थान प्रवाहिक पद्धतियों के आक्रमण से अपने उक्थकेन्द्र से विच्युत न हो जाय। ऐसी स्थिति में कहीं भी अशीति को नमस्य मान लिया गया है जिसके द्वारा संस्थान के सांस्कृतिक उक्थस्वरूप के अभिभव की आशङ्का सी थी। यही मानवाश्रम का उक्थकेन्द्रनिष्ठमोक्षलक्षण पद 'इन्द्रानि-मन्दान' है जिसकी तपोपदर्शिता अर्चोदनात्मिका अशीतिसंग्रहणनिष्ठा की मधुरतमा न आश्रम के पथमात्र आदर्शों इस सुहृद् का आज श्वेतक्रान्ति के महान् सन्देश के लिए प्रेरित किया है। संस्थान की इसी

(२१)–घोषणापत्र के माध्यम से अपेक्षित 'तानूनप्त्र'—

भूपिण्ड के अधिष्ठाता अर्थशक्तिघन अग्निदेवता, अन्तरिक्ष के अधिष्ठाता क्रियाशक्तिघन वायुदेवता, एवं स्वर्गात्मक द्युलोक के अधिष्ठाता ज्ञानशक्तिघन आदित्यदेवता, इन तीनों त्रैलोक्य-देवताओंनें सृष्टिसञ्चालन-कर्म्म से पूर्व ही परस्पर यह प्रतिज्ञा की थी कि, "त्रैलोक्यप्रजा के सञ्चालन-संरक्षण-परिवर्द्धन के लिए हमें अपनें तनुओं को परस्पर एक दूसरे के प्रति आश्रित ही रखना पड़ेगा। तभी हम इस महान् उत्तरदायित्व के निर्वाह में सफल हो सकेंगे। इस पारस्परिक समन्वय के माध्यम से ही हम अपने तनुभावों को निर्बलतालक्षण पतन से बचा सकेंगे"। ऐसा ही किया था न प्राणदेवताओंनें। यही पारस्परिक समन्वय 'तानूनप्त्र' कहलाया था।

आज के इस प्रक्रान्त दुर्दान्त युग में भारतीय मानवों को भी उसी तानूनप्त्र का अनुगमन करना है। भारतराष्ट्र में पार्थिवाग्निमूलक अर्थभाव की भी न्यूनता नहीं है, आन्तरिक्ष्य वायुमूलक क्रियाभाव का भी अभाव नहीं है। एवं दिव्य आदित्यमूलक ज्ञानभाव का भी अभाव नहीं है। मानव के सर्वक्षेत्रीय अभ्युदय, तथा निःश्रेयस् के लिए अपेक्षित ज्ञान-क्रिया-अर्थ, तीनों ही यहाँ पर्य्याप्त हैं। इन तीनों महान् साधनों के विद्यमान रहते हुए भी क्यों नहीं भारतीय मानव अपनी मानवीया परिपूर्णता से समन्वित हो रहा ? प्रश्न का एकमात्र समाधान तानूनप्त्र की विस्मृति ही माना जायगा। निःसन्देह आज राष्ट्र की ज्ञान-कर्म्म-अर्थ तीनों शक्तियाँ पारस्परिक समन्वय के अभाव से सर्वथा शून्य बन गई हैं। जिस मानववर्ग के प्रज्ञाकोष में कर्म्मशक्ति है, वह ज्ञान और अर्थ से वञ्चित है। जिसके तैजसकोष में कर्म्मशक्ति है, वह ज्ञान और अर्थ से असम्बद्ध है। एवं जिसके वैश्वानरकोष में अर्थशक्ति है, वह ज्ञान और कर्म्म से पराङ्मुख है।

सहजभाषा में–जो जानता है, वह न तो करता ही, न करने के अनुरूप उसके कोष में साधन ही। जो करता है वह न तो जानता ही, न जानने के साधन ही उसके कोष में। एवमेव जो साधनसम्पन्न है, वह न तो जानता ही, न करता ही। इस प्रकार ज्ञान-कर्म्म-अर्थ तीनों ही राष्ट्रशक्तियाँ आज विराकसित हो रहीं हैं। जो कुछ भी जानते नहीं, आज वे ही सर्वज्ञ बने हुए हैं एवं अधनत्व के माध्यम से वे ही आज राष्ट्रकर्म्म के मार्गविधाता बने हुए हैं। इसी असमन्वय का यह दुष्परिणाम है कि, आज राष्ट्र का सांस्कृतिक ज्ञानवैभव, प्राकृतिक स्वधर्मनिष्ठ कर्म्मकौशल एवं सम विभजन' मूलक अर्थविनिमय, तीनों ही क्षेत्र पारस्परिक सहयोगरूप तानूनप्त्र से पराङ्मुख बने हुए हैं। परिणाम इस पराङ्मुखता का जो हुआ, एवं हो रहा है, वह आबालवृद्ध वनिता सब के सम्मुख है। इस भयावह सर्वविनाशक परिणाम किंवा दुष्परिणाम, के निरोध के लिए राष्ट्रीय मानवश्रेष्ठों के लिए यह अनिवार्य्यरूपेण अपेक्षित है कि, वे प्रत्येक जनमानस के अन्तराल में 'तानूनप्त्र' के बीज प्रतिष्ठित कर दें। "किसी से किसी प्रकार का भय न करते हुए

(२२)—श्वेतक्रान्ति का महान् उद्घोष—

राष्ट्रीय मानवो !

आपका राष्ट्र वह 'भारतराष्ट्र' है, जिस के मूल में समस्त विश्व को हव्य-कव्य-प्रदान करने वाले, अतएव 'भारत' नाम से ही प्रसिद्ध प्रशंसित अग्निदेवता विराजमान हैं ❀।

राष्ट्रीय मानवो !

कदम्बवृत्त के केन्द्र में प्रतिष्ठित नाकस्थ विष्णुदेवता के चारों ओर चतुर्विंशतिसंख्याक व्यासार्द्धवृत्त से परिक्रममाण प्रश्न आज आपके भारतराष्ट्र के अभिमुख हो गया है। फलस्वरूप आज आपका राष्ट्रीय भारताग्नि जग पड़ा है। अतएव इस अग्निजागरणवेला में आप को अपनी दीर्घकालीना सुषुप्ति का परित्याग कर इस श्वेतक्रान्तिपथ पर आरूढ़ हो ही जाना है, जिसकी एकान्तरासूत्री ही आपके इस आग्नेय राष्ट्र को अभ्युदय-निःश्रेयस् पथ का पथिक बना सकती है।

❀ "दौष्यन्ति भरत के नाम से यह राष्ट्र 'भारत' कहलाया है," इस लोकयशोऽनुगता मान्यता का संरक्षण करते हुए हमें इस प्राजापत्य (वैदिक) तथ्य की ओर भारतीय आप मानव का ध्यान आकर्षित कर ही देना है कि, यह राष्ट्र वस्तुतः 'अग्नि' के कारण ही 'भारतवर्ष' कहलाया है। 'अग्ने महाँ असि ब्राह्मण ! भारतति' (मन्त्रसंहिता) इत्यादि मन्त्र के अनुसार ब्रह्मवर्चस् प्रवर्त्तक अग्नि ही महान् है। इसी के द्वारा क्योंकि मानव-देव-पितर-पशु-आदि समस्त वर्गों के लिए ओषधि-हव्य-कव्य-उच्छिष्ट-आदि से भरणपोषण होता रहता है, अतएव यह अग्नि ही 'भारत' कहलाए हैं। यद्यपि—'अग्निर्भूस्थानः' (यास्कनिरुक्त) इत्यादि निरुक्तसिद्धान्तानुसार यह भारत अग्नि अखिल भूपिण्डका ही भरण पोषण करता है। अतएव इस दृष्टि से यद्यपि सम्पूर्ण भूमण्डल को ही 'भारत' कहना चाहिए था। तथापि विषुवद्वृत्तीय रेखा से अनुप्राणित इस आर्य्यावर्त्तीय भूभाग में ही क्योंकि भारताग्नि—'अग्निर्जागार तमृचः कामयन्ते' इत्यादि सिद्धान्तानुसार अपने वैश्वानिक पूर्णस्वरूप से अभिव्यक्त रहते हैं, अतएव यही भूभाग 'भारतवर्ष' नाम से प्रसिद्ध हुआ है। निष्कर्षतः जागरूक भारताग्नि की प्रधानता से ही हमारा यह आर्य्यावर्त्तराष्ट्र 'भारतराष्ट्र' कहलाया है। निम्नलिखित शतपथी श्रुति भी इसी दृष्टिकोण का समर्थन कर रही है—

"अग्ने महाँ ऽ असि ब्राह्मण भारतति। ब्रह्म ह्यग्निः, तस्मादाह—'ब्राह्मणेति'। भारतेति-एष हि देवेभ्यो हव्यं भरति (पितृभ्यः कव्यं भरति, पशुभ्यश्च ओषधिवनस्पतीश्च भरति), तस्मात्—'भरतोऽग्नि' रित्याहुः। एष उ वा इमाः प्रजाः प्राणो भूत्वा बिभर्ति, तस्मा-देवाह—भारतेति"।

—शतपथब्राह्मण १।५।१।८ ॥

(४)—विश्वमानवो ! आप अपने शरीरानुगत 'भूत' का सन्तनन करो !

(५)—विश्वमानवो ! आप अपनी 'मूलप्रकृति' को सत्य बनाओ !

(६)—विश्वमानवो ! आप अपने मानवस्वरूप के आधार पर 'समाज' को प्रतिष्ठित करो !

(७)—विश्वमानवो ! आप द्वारा धनवता प्रजा का 'तन्तुवितान' करो !

(८)—विश्वमानवो ! रोदसी त्रैलोक्य के प्राकृतिक 'प्राण' का समन्वय प्राप्त करो।

(९)—विश्वमानवो ! अग्निदश भारत को अपना आदर्श मानो !

(१०)—विश्वमानवो ! पशुभाव से अपना आत्मत्राण करो !

(११)—विश्वमानवो ! 'मानव' की महती अभिधा को सत्य बनाओ !

सर्वान्त में—

राष्ट्रीय मानवो !

रसक्रान्ति के प्रस्तुत घोषणा पत्र के व्यक्तीभाव के अतिरिक्त अब हमें कुछ भी नहीं कहना है। इस 'घोषणापत्र' के आधार पर ही आपको अपना कर्तव्यनिर्धारित कर लेना है। इस कर्तव्य-निष्ठा के साथ साथ ही भारतराष्ट्र की इस मङ्गलाशंसा को भी विस्मृत नहीं करना है कि—

ब्रह्मवीर्य्यपरिशुद्धिहेतव:–सूर्य्य–सोमरस–यज्ञ–धनय: ॥
क्लेशसिन्धुतरणाय संस्तव: सहता अथ विधिर्दघे नमः ॥१॥

धर्मिया च इह सूर्य्य–सोमजा:, ब्राह्मणा च इह यज्ञसंश्रिता ॥
विट्प्रजा च इह धनुपालकास्तरत, स्तेषु सान्ति दिशया धिय: श्रियः ॥२॥

दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां ! वेदा:, सन्ततिर ॥!
श्रद्धा च नो मा व्यगमत् ! बहुदेयं च नो ऽस्तु ! ॥३॥

अन्नं च नो बहु भवतु ! अतिथींश्च लभेमहि !
याचितारश्च नः सन्तु ! मा च याचिष्म कश्चन ! ॥४॥

आ ब्रह्मन् ! ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् !
आ राष्ट्रे राजन्य शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् !

श्री

'राजस्थानवैदिकतत्त्वशोधसंस्थानजयपुर'

नामक

संस्थान का संविधान-परिपत्र

राजस्थान शासनद्वारा पञ्जीयित (रजिस्टर्ड)

संस्थानसंस्थापकमण्डल—

१—श्रीमोतीलालशर्मा, जयपुर	अध्यक्ष
२—श्रीलक्ष्मीलालजोशी जयपुर	मान्यसदस्य
३—श्रीदुर्गालालसेकसरिया बम्बई	मान्यसदस्य
४—श्रीवासुदेवशरणअग्रवाल बनारस	मन्त्री
५—श्रीराधाकृष्णरस्तोगी, जयपुर	मान्यसदस्य
६—श्री डॉ० ज्वालाप्रसादगोविल जयपुर	कोषाध्यक्ष
७—श्रीकृष्णचन्द्रशर्मा जयपुर	सदस्य

G P Udaipur 715–500–10–54

GOVERNMENT OF RAJASTHAN

No 18, 1955–1956

I hereby certify that RAJASTHAN VEDICTA SANSTHAN JAIPUR has this day been registered under Societies Registration Act, 1860 Given under my hand and seal at Jaipur this First day of November One Thousand Nine Hundred Fifty Five. Fee Rs. 50/–

Seal.

Gulab Singh
Registrar
Joint Stock Companies, Rajasthan.
JAIPUR.

श्री

'राजस्थान-वैदिकतत्त्वशोधसंस्थान-जयपुर'

विधानपञ्जिका

प्रस्तावना—क्योंकि श्रीमोतीलालशर्म्मा पिछले ३० वर्षों से एकाकीरूप से महत्त्वाकांक्षिया से युक्तभाव वेदतत्त्वनिष्ठा के शोधकार्य्य में अनन्यनिष्ठा से अहोरात्र संलग्न हैं—

क्योंकि अबतक ८० हजार पृष्ठीय मौलिक साहित्य राष्ट्रभाषा हिन्दी में शोधकार्य्य के परिणामस्वरूप विनिर्म्मित हो चुका है, अतः लगभग दस हजार पृष्ठ इस लिखित साहित्य में से प्रकाशित भी हो चुके हैं, एवं इस प्रकाशित साहित्य में से अनुमानतः डेढ़ लाख रुपये की लागत के ग्रन्थ विशिष्ट विद्वानों में निःशुल्क वितरित भी हो चुके हैं—

क्योंकि लगभग ४० प्रचारयात्राओं के द्वारा इस सम्प्रदायनिरपेक्ष मौलिक तत्त्ववाद का श्रीमोतीलालशर्म्मा सफल प्रचार भी कर चुके हैं—

क्योंकि प्रचार के परिणामस्वरूप श्रीमोतीलालशर्म्मा के तथाकथित शोधकार्य्य की महती उपयोगिता राष्ट्र के प्राच्य तथा प्रतीच्य विचारों के मर्म्मज्ञ विद्वानों के द्वारा सर्वथा अभिमत हो चुकी है—

क्योंकि शोधकार्य्य, प्रचारयात्रा, ग्रन्थप्रकाशन और वितरण आदि समस्त प्रगतियों का अब तक एकाकीरूप से वहन करने के कारण श्रीमोतीलालशर्म्मा शारीरक चिन्तनीय दशा में अस्वस्थ हो चुके हैं—

क्योंकि अब इनके द्वारा एकाकीरूप से इस गुरुतमभार का वहन करना अशक्य प्रमाणित हो चुका है—

क्योंकि इस एकाकी प्रयत्न को सामूहिक प्रयत्न के द्वारा व्यवस्थित रूप से सञ्चालित करने के लिए कतिपय सांस्कृतिक सहयोगियों की सम्मति से इस कार्य को सार्वजनिक संस्थाकरूप में सञ्चालित करने की आवश्यकता अनुभूत हो गई है—

अतएव अनुवर्त्ती पंक्तियों में निर्दिष्टरूप से यह संस्था निर्म्मित की जा रही है।

१—संस्था का नाम—इस संस्था का नाम "राजस्थान-वैदिकतत्त्वशोधसंस्थानजयपुर" होगा।

२—उद्देश्य—(१) वैदिकसाहित्य की सम्प्रदायनिरपेक्ष-ज्ञानविज्ञानात्मिका परिभाषाओं का राष्ट्रभाषा हिन्दी में आर्षविचारशैली के अनुरूप परिशोधकार्य्य, (२) शोधपरिणामों का देशी विदेशी भाषाओं के द्वारा प्रकाशन और प्रचार कार्य्य, (३) सांस्कृतिक आर्षसिद्धान्तों के आधार पर विश्वमानव के उद्बोधन एवं एकीकरण का प्रयत्न।

राजस्थानवैदिकतत्त्वशोधसंस्थानजयपुर के नियम

१—राजस्थानवैदिकतत्त्वशोधसंस्थान का मुख्य कार्यालय मानवाश्रम दुर्गापुरा, जयपुर में अवस्थित होगा।

२—जो महानुभाव व्यवस्थापिकापरिषत् की दृष्टि में इस संस्था के उद्देश्य की पूर्ति में सहायक प्रतीत होंगे, व उक्त परिषत् की लिखित अनुमति प्राप्त होने पर इस संस्था के सदस्य बन सकेंगे।

३—शुल्क—इस संस्था की सदस्यता का शुल्क एक रुपया वार्षिक होगा।

४—सदस्य का पञ्जीयन—व्यवस्थापिकापरिषद् का अनुमतिपत्र और शुल्क जमा होने की रसीद प्रस्तुत करने वाला प्रत्येक व्यक्ति संस्था का सदस्य पञ्जीबद्ध कर लिया जायगा।

५—व्यवस्थापिकापरिषत्—इस संस्था के समस्त उत्तरदायित्व-वहन करने के लिए, एवं प्रबन्धव्यवस्थासञ्चालन के लिए एक व्यवस्थापिकापरिषद् (गवर्निंगबॉडी) का निर्माण किया जाता है जिसके निम्नलिखित तीन सदस्य होंगे।

(१) श्रीमोतीलालशर्म्मा

(२) डॉ०श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल

(३) डॉ०श्रीज्वालाप्रसाद गोयिल

६-अध्यक्ष—श्रीमोतीलालशर्म्मा इस संस्था तथा व्यवस्थापिकापरिषत् के आजीवन अध्यक्ष रहेंगे।

७-रिक्त स्थान की पूर्ति—व्यवस्थापिकापरिषत् के सदस्य का स्थान किसी कारणवश रिक्त हो जाने पर अध्यक्ष उस रिक्त स्थान की पूर्ति करेंगे। भविष्य के लिए अध्यक्ष स्वयं अपना उत्तराधिकारी निश्चित करेंगे। परन्तु बिना उत्तराधिकारी नियुक्त किए अध्यक्ष के आकस्मिक निधन हो जाने पर व्यवस्थापिकापरिषत् के शेष सदस्य नए अध्यक्ष का निर्वाचन कर सकेंगे।

८-व्यवस्थापक—व्यवस्थापिकापरिषत् की अनुमति से संस्था का दैनिक कार्यसञ्चालन करने के लिए सदस्यों में से एक व्यक्ति व्यवस्थापक रहेगा जो व्यवस्थापिकापरिषत् के निर्णयों को कार्यान्वित करेगा। व्यवस्थापक का चुनाव व्यवस्थापिकापरिषत् करेगी।

९—कोष—संस्था के कोष का प्रबन्ध व्यवस्थापिकापरिषत् की अनुमति से करेंगे। आय-व्यय का हिसाब रखने के लिए भी वे ही उत्तरदायी होंगे।

१०—ईक्षण (आडिट्)—प्रतिवर्ष आय-व्यय का ईक्षण वार्षिक एकाउन्टेंट कराया जाएगा, एवं उसके प्रतिवेदन को प्रकाशित करा दिया जाएगा।

११—संस्था की सम्पत्ति—संस्था की सम्पत्ति के साधन निम्न लिखित होंगे :—

(१) सदस्यशुल्क,

(२) राजकीय योगदान,

(३) सार्वजनिक योगदान,

(४) श्रीमोतीलालशर्म्मा के द्वारा अब तक प्रकाशित ग्रन्थों की अवशिष्ट प्रतियों में से जो बेची जावें, उनका ५० प्रतिशत मूल्य।

(५) श्रीमोतीलालशर्म्मा के द्वारा लिखित ग्रन्थों का—जो भविष्य में इस संस्था के द्वारा प्रकाशित किए जावें, और उनमें से जितनी बिक्री हो—उस मूल्य का २५ प्रतिशत श्रीमोतीलालशर्म्मा को प्रदान किया जाकर शेष ७५ प्रतिशत।

विद्वानों की सम्मतियाँ

एवं

समाचारपत्रों की अभिव्यक्तियाँ

सम्पादक—बेणीशङ्कर शर्मा (कलकत्ता)

गङ्गाप्रसाद भोतिका (कलकत्ता)

प्रकाशित—अप्रकाशित वैदिकविज्ञान के सम्बन्ध में

प्राच्यसंस्कृतिनिष्ठ, तथा प्रतीच्यशिक्षानुगत विद्वानों की

१—विद्यावाचस्पति, समीक्षाचक्रवर्ती श्री श्री मधुसूदन जी महाराज, जयपुर
२—गोस्वामिकुलकौस्तुभ श्री गोकुलनाथ जी महाराज बड़ामन्दिर बम्बई
३—महामान्य श्रीमदनमोहन जी मालवीय महाभाग, काशी
४—महामहोपाध्याय श्री बालकृष्णजी महाराज मैथिल, विश्वविद्यालय काशी
५—महामहोपाध्याय श्री प्रमथनाथजी तर्कभूषण, काशी
६—सुप्रसिद्ध दार्शनिक डॉ० श्रीभगवानदासजी महाभाग, काशी
७—महामहोपाध्याय श्रद्धेय श्री गिरिधरजी महाराज चतुर्वेदी जयपुर
८—पण्डितप्रवर श्री सूर्यनारायण जी आचार्य व्याख्यानवाचस्पति, जयपुर
९—माननीय 'देवर्षि' श्री रमानाथजी व्यास शास्त्रभूषण, नाथद्वारा
१०—महामहोपाध्याय श्री शालग्रामजी शास्त्री विद्यावाचस्पति लखनऊ
११—महामहोपाध्याय श्रीरमापतिजी मिश्र, बम्बई
१२—माननीय श्री श्रीधर अण्णाशास्त्री महोदय 'वारे' श्रीक्षेत्रनासिक
१३—माननीय श्री हरिदत्तजी शास्त्री तन्त्ररहस्यवेत्ता राजगुरु टेहरी—देहरादून
१४—माननीय श्री जीवनशङ्करजी महोदय याज्ञिक एम ए. काशीविश्वविद्यालय
१५—माननीय डॉ० श्रीमङ्गलदेवजी एम ए. डी फिल० काशी
१६—माननीय श्री चन्द्रभानुजी शास्त्री 'पुराणवाचस्पती' हरीद्वार
१७—माननीय श्री देवराजजी विद्यावाचस्पति गुरुकुल सोनगढ़—काठियावाड़
१८—विद्वत्प्रवर श्री श्रीपाद दामोदरसातवलेकर महोदय औंध
१९—माननीय श्री रामदत्तजी शुक्ल एम० ए लखनऊ
२०—श्रीयुत बृहस्पतिजी आचार्य गुरुकुलविश्वविद्यालय वृन्दावन
२१—श्रीनजरअली हसनभाई महोदय, गणदेवी गुजरात
२२—माननीय डॉ० श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल, काशीविश्वविद्यालय
२३—महामहोपाध्याय श्रीगोपीनाथजी कविराज एम ए काशी
२४—माननीय श्री कृष्णपुरुषोत्तम कर महोदय एम ए० बैरिस्टर काशी विश्वविद्यालय
२५—माननीय डॉ० श्री भीखनलाल महोदय आत्रेय एम् ए० काशी विश्वविद्यालय

—✱—

वेदवाचस्पति प० श्रीमोतीलालजीशास्त्री
और
उन का संक्षिप्त परिचय

इधर कई वर्षों से जयपुर निवासी वेदवाचस्पति पं० मोतीलालजी शास्त्री ने बम्बई, हैदराबाद कलकत्ता बनारस इत्यादि स्थानों में वैदिक विषयों के स्पष्टीकरण के सम्बन्ध में जो धारावाहिक रूप से व्याख्यान दिये हैं, उनसे हमारा जनसाधारण समाज, विशेषकर हमारा आधुनिक शिक्षित वर्ग काफी प्रभावित एवं आकर्षित हुआ है, और उन्होंने कई स्थानों से पंडितजी के जीवन, उनके कार्य एवं उद्देश्यों के सम्बन्ध में कुछ जानने की इच्छा प्रकट की है। हम उसी जिज्ञासा की पूर्ति के लिये आज वैदिक संस्कृति के प्रेमियों के सम्मुख पंडितजी का संक्षिप्त परिचय तथा उन्होंने आज तक क्या क्या किया या लिखा है, तथा उसके सम्बन्ध में हमारे विद्वानों की क्या राय है, पेश कर रहे हैं।

पंडित मोतीलालजी का जन्म जयपुर में भाद्रपद शुक्ला ३ सं० १६६४ को हुआ था। आप स्वर्गीय श्री बालचन्द्रजी शास्त्री के कनिष्ठ पुत्र हैं। जीवन के प्रथम सोलह वर्षों तक आपने स्वर्गीय पिताजी के चरणों में ही बैठकर संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया। अनन्तर जयपुर संस्कृत कालेज में व्याकरण शास्त्री परीक्षा पास की। तबतक विद्यावाचस्पति समीक्षाचक्रवर्त्ती, वेदोद्धारक स्वर्गीय पं० श्री मधुसूदनजी ओझा से आपका कोई विशेष परिचय नहीं था, हालाँकि आपका निवासस्थान भी वहीं जयपुर में ही था जो स्वर्गीय ओझाजी का कर्मक्षेत्र था। जैसे संसार की और अन्य बड़ी घटनायें अकस्मात रूप से ही हुआ करती हैं वैसे ही पंडित मोतीलालजी एवं स्वर्गीय ओझाजी का मिलन भी हुआ था। इस मिलन की महत्ता और भी बढ़ जाती है, जब हम देखते हैं कि यह जयपुर में न होकर हमारे पुण्य-धाम काशी क्षेत्र में हुआ। आज से प्रायः १३ वर्ष पूर्व स्वर्गीय ओझाजी काशी में सम्वत् १६८३ के लगभग आये हुए थे। उस समय अपने दर्शनगुरु महामहोपाध्याय पं० गिरधरजी शर्मा के साथ आप भी भारत-धर्ममहामण्डल में सम्मिलित होने के लिये काशी पधारे थे। वहीं अकस्मात् आपको स्वर्गीय ओझाजी का वैदिक-विज्ञान-सम्बन्धी प्रथम व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस समय आपकी अवस्था मुश्किल से १६।१७ वर्ष की होगी। किन्तु इस अल्पावस्था में ही शास्त्री-परीक्षोत्तीर्ण हो जाने के कारण आपने अपने मनमें समझ रक्खा था कि, विद्वान् कहलाने के लिये जितनी भी विद्वत्ता की आवश्यकता है वह सब प्राप्त कर चुके हैं, और अब कुछ करना बाकी नहीं है किन्तु स्व० ओझाजी के व्याख्यान की प्रथम ठक्कर ने ही आपके इस गर्व को छिन्न-भिन्न कर दिया और आपके मस्तिष्क

में एक अजीब तूफान पैदा हो गया। दूसरे दिन ही प्रातःकाल "अथ प्रपञ्चम्" की भावना लेकर ओझाजी के चरणों में पहुँचे। यहीं से आपके प्रथम अध्याय आरम्भ होता है।

जयपुर वापस आने पर आपने ओझाजी से क्रमिक रूप से अध्ययन किया, किन्तु ऐसा करने में सब से बड़ी बाधा आपको अपने स्वर्गीय पिता तथा से मिली। क्योंकि वे जानते थे कि, स्वर्गीय ओझाजी के कठिन अनुशासन में कोई उनकी विद्या को प्राप्त ही नहीं कर सकता, तथा दूसरे यदि प्राप्त कर भी ले तो उसका उपयोग ही क्या? क्योंकि उनका अनुमान था कि वेदों को पढ़कर न तो विद्यालय में शिक्षक का कार्य कर जीविकोपार्जन ही कर सकता है न अपनी ऐसी अवस्था में इन लोगों ने हर प्रकार से आपको इस पथ से च्युत करने की चेष्टा की, यहाँ तो जो रँग जम चुका था वह उतरने का नहीं था। इन लोगों के सारे प्रयत्न जब आपने अपना विचार नहीं बदला तो क्रुद्ध होकर आपके पितृ श्री ने आपको घर से निकाल दिया। आपके पितृ श्री पं० बालचन्द्रजी शास्त्री बड़े कटुशासक थे और उनको यह सह्य नहीं था कि आपका एक पुत्र आपकी आज्ञा का उल्लंघन कर आपकी इस प्रकार बालक मोतीलाल को अलग कर ही आपका क्रोध शान्त नहीं हुआ। पर्याप्त दण्ड देने के से आपने आपके साथ-साथ आपकी धर्मपत्नी (तब तक आपका विवाह हो चुका था), माताजी (बड़ी भाभी, जिनको आप दत्तक दिये गये हैं) का भी आपके साथ ही अलग कर

सोलह-सत्रह वर्ष की अवस्था का एक अपरिपक्वमति बालक सांसारिक ज्ञान से शून्य, पास में एक पैसा नहीं कमाने के उपायों से अनभिज्ञ और उस पर इस...स्वरूप यह बोझ, साथ २ ज्ञानार्जन करने की उत्कट अभिलाषा। स्वर्गीय पं० बालचन्द्रजी तथा सलाहकारों ने सोचा कि परिवार का बोझ सम्हाल सकने में असमर्थ होने के कारण मोतीलाल स्वयं ही सुराह (?) पर आ जायगा, किन्तु उनका यह सोचना बिल्कुल भ्रम-पूर्ण साबित हुआ, क्योंकि बालक मोतीलाल के हृदय में जिस ज्ञान-पिपासा की ज्वाला धधक चुकी थी, उसे शान्त करने के लिये वह संसार का बड़ा से बड़ा कष्ट सहन करने के लिये प्रस्तुत था। संसार का बड़ से बड़ा त्याग उसके लिये तुच्छ था।

इसलिये इस आकस्मिक आघात से वह घबड़ाये नहीं। किसी प्रकार माता और पत्नी को उनके मायके भेज कर अपने भरण-पोषण के लिये ४) मासिक ट्यूशन कर, स्वयं अपने हाथ से रोटियाँ बना कर एवं पराठा पान और गुड़ खाकर अपना अध्ययन जारी रखा।

इधर पारिवारिक अवस्था तो यह थी, उधर स्व० ओझाजी के अनुशासन में आपको

आप लीक की धार पर चलना था। कहा जाता है कि पंडित मोतीलाल को छोड़ कर और कोई भी अन्य विद्यार्थी स्व० ओझाजी से क्रमिक एवं नियमित रूप से इतने दिनों तक अध्ययन नहीं कर सका। आपके अनुशासन का तार मामूली श्रेणी के विद्यार्थियों के लिये असह्य था, और यही कारण था कि विद्यार्थी-परम्परा के हिसाब से आपके ज्ञान का प्रचार जितना होना चाहिए था, उतना नहीं हो सका। स्व० ओझाजी की अध्ययन-प्रणाली विचित्र थी। आप कठिनतम विषय को पहले उठाकर पीछे हल्के विषयों की ओर आया करते थे। आपका कठिन आदेश था कि जबतक मैं बोलता रहूं, मुझसे बीच में प्रश्न न किया जाय, न बोलने के समय किसी प्रकार का नोट ही लिया जाय, और न किसी छपे हुए या अन्य किसी के लिखे हुए ग्रन्थ का आश्रय ही ग्रहण किया जाय। आपका यह भी आदेश था कि पहले दिन जो कुछ सुना जाय दूसरे दिन उसे लिपिबद्ध कर उन्हें दिखाया जाय। ऐसी अवस्था में बड़ा कठिन परिश्रम अपेक्षित था, और चौबीस घंटे के दिन रात में इतना समय कहाँ? बाध्य होकर आपको अपनी निद्रा की मात्रा कम करनी पड़ी, और आज भी यह अवस्था है कि आप दिन रात में केवल तीन घंटे ही सोया करते हैं। आज १५ वर्षों से यही अवस्था है, किन्तु स्व० ओझाजी का इतने से भी सन्तोष नहीं था। उनका कहना था कि जिस मनुष्य के सामने संसार की इतनी बड़ी ज्ञानराशि इस अस्तव्यस्त एवं बिखरी हुई अवस्था में पड़ी रहे, उसे आँख रहते हुये सोने की फुरसत कहाँ! कहा जाता है कि स्वर्गीय ओझाजी अपने जीवन के प्रथम चालीस वर्षों में पन्द्रह दिन में केवल एक दिन प्रतिपदा को ही सोया करते थे, बाकी प्रति दिन चौबीसों घंटे अध्ययन में रत रहते थे। यही कारण है कि आपने अपने जीवनकाल में संस्कृत में प्रायः २२० ग्रन्थ लिखे, जिन्हें समझने वाले भी भारतवर्ष में आज बहुत कम विद्वान हैं।

स्व० ओझाजी के पुण्य-प्रसाद से हमें आज मोतीलालजी सरीखा विद्वान् प्राप्त हुआ है, जिस पर आज भारतवर्ष को नाज है। मृत्युकाल तक ओझाजी के चरणों में बैठ कर आपने जिस वैदिक साहित्य का अन्वेषण किया है, वह अगाध है। इतने वर्षों तक इतना कठिन परिश्रम करते रहने पर भी आपका कहना है कि स्वर्गीय ओझाजी में जो अगाध ज्ञान था उसका अंश भी मैं नहीं ले सका हूँ लेकिन गुरु-कृपा से जिस स्थान पर मैं पहुँच चुका हूँ, वहाँ से मैं अपना अध्ययन-क्रम जारी रख सकता हूँ।

आज तक आपने हिन्दी में फुलिस्केप साईज के प्रायः पचास हजार पृष्ठ वैदिक विज्ञान सम्बन्धी विभिन्न विषयों पर लिखे हैं जो प्राचीनतम होते हुए भी आज संसार के लिये बिल्कुल नवीन हैं। आपके इस साहित्य के प्रसार से हमारी विलुप्तप्राय प्राच्यसंस्कृति का पुनरुद्धार होगा और दिनों दिन ह्रास की ओर जाती हुई लोगों की आस्था उसमें बढ़ेगी, ऐसा विद्वानों का विश्वास है। क्योंकि हिन्दूधर्म ए बहुत से जटिल कैसे? और क्यों? का उत्तर आज हमें हमारे आज के पंडित समुदाय से नहीं मिलता। वही उत्तर हमें हमारे इस प्राचीन साहित्य से मिलता है।

श्री

१—विद्यावाचस्पति, समीक्षा-चक्रवर्ती श्री-
 १०८ श्रीश्री गुरुवर श्रीमधुसूदनजी
 ओझा महाराज मैथिल, जयपुर।

श्री १०८ श्रीपूज्य गुरुचरणों का प्रसाद

मा-ज्ञानसम्पदेतस्या, उक्तीला रक्षणस्थिति ।
तां साहित्य -समादत्ते, स मोतीलाल उच्यते ॥

"ज्ञानसम्पत्ति की रक्षणस्थिति को जो प्राप्त करता है, (ज्ञानसम्पत्ति जहाँ सुरक्षित रहती है) वह मोतीलाल कहा जाता है"।

"वेदोऽखिलो धर्म्ममूलम्" "वेदाद्धर्म्मो हि निर्बभौ"
"धर्म्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः"
"ब्रह्मविषया ह वै सर्वे भविष्यन्तो मन्यत"
"सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति"

इत्यादि वचनों के द्वारा विदितवेदितव्य, अधिगतयाथातथ्य, अतीतानागतज्ञ आर्य-महर्षियों नें एकमात्र वेद को ही अभ्युदय एवं निःश्रेयस् का कारण माना है। आज जनता का इससे बढ़कर और दुर्भाग्य क्या हो सकता है कि, आज उसने अपने सर्वस्वभूत वैदिक साहित्य की उपेक्षा कर अपना सर्वनाश करा लिया है। विज्ञानमय वैदिक साहित्य जैसी महाविभूति का तिरस्कार कर आर्यजाति आज सर्वात्मना तिरस्कृत हो रही है।

चिरकाल से मोहनिद्रा में निमग्न आर्यजाति को प्रबुद्ध करने के लिये ईश्वरज्ञानस्वरूप वैदिक साहित्य विज्ञानदृष्टि से हमने जनता के सामने रक्खा है। वैदिक साहित्य के रहस्यार्थ प्रतिपादन के लिये स्वतन्त्ररूप से अबतक भिन्न भिन्न वैदिक विषयों पर गद्य-पद्यात्मक ८० ग्रन्थ लिख हैं। इन ग्रन्थों के आशय को सर्वसाधारण तक पहुँचाने के लिए ब्रह्मचारी मोतीलालशर्म्मा ने कितना ही अंश हिन्दीभाषा में प्रस्तुत किया है।

अवस्था में 'बालक', किन्तु हमारे इस दुरूह वैदिक विज्ञान के लिए सत्पात्र मोतीलालशर्म्मा ने देश के पास वैदिक सन्देश पहुँचाया है। एवं यह सुनकर हम अपनी समस्त आयु का परिश्रम सफल समझते हैं कि, यह विद्यार्थी अपने इस विज्ञान-प्रचार-कार्य्य में आंशिक रूप से सफल हुआ। जगदीश्वर से कामना करते हैं कि वह इसे इस आयोजन को सदा के लिए स्थायी बनाने में पूर्ण सफलता दे।

७-३-३०
पैलस लायब्रेरी, जयपुर
(राजपूताना)

श्रीमधुसूदनशर्म्मा, ओझा वि० वा०

मतों के प्रचार से और राजाओं की ओर से प्रोत्साहन न होने के कारण वेदों का अध्ययन और कम हो गया। जब हिन्दुओं के वैदिक संस्कार समय से होते थे, जब वेदों का अध्ययन अध्यापन विधिवत होता था, जब हमारा देश स्वतन्त्र था, और धर्म रक्षित था, उस समय हमारी जाति और देश का गौरव अत्यन्त ऊँचा था, और उस समय हमारी जातीय वैदिक प्रार्थना यह होती थी—

"आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्।
आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्।
दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः।
सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्।
निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु।
फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्।
योगक्षेमो नः कल्पताम्।"

जब से हमारे यहाँ धार्मिक संस्कार और वेद का अध्ययन कम होने लगा तभी से हमारे अधःपात का आरम्भ हुआ, और वेद वेदांग जानने वाले द्विजातियों की संख्या कम होने लगी। जब से मरहठों का राज्य हटा और अंग्रेजों का राज्य स्थापित हुआ और नए ढंग से स्कूल और कालेजों की पढ़ाई सारे देश में फैल गई, तब से वेदों का अध्ययन और भी कम होने लगा, और वेदों के जानने वाले विद्वानों की संख्या और घट गई। अधिकतर वेदांगों का ही अध्ययन प्रचलित रहा।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज स्थापित कर वेदों के अध्ययन की ओर हिन्दू जनता का ध्यान आकर्षित किया, तथापि वेद-वेदांग के जानने वाले विद्वानों की संख्या बहुत नियमित रह गई। यह संतोष की बात है कि, सब विद्वानों के होते हुए भी किसी समय वेदों का अध्ययन सर्वथा लुप्त नहीं हुआ। वेद-वेदांग जानने वाले उन दुर्लभ मनुष्यों में विद्या-वाचस्पति पण्डित मधुसूदन ओझाजी एक विशिष्ट व्यक्ति थे। यदि उनको वेद विद्यावारिधि कहा जाय तो अनुचित न होगा। उन्होंने वैदिक साहित्य के रहस्यार्थप्रतिपादन के लिए बहुत से ग्रन्थ लिखे हैं। और वैदिक साहित्य को वैज्ञानिक दृष्टि से विद्वन् संसार के सामने रखा है। पण्डितजी ने चालीस वर्षों तक वेदों का अध्ययन और अध्यापन किया था। पण्डितजी के अनेक शिष्य थे किन्तु उनमें सब से विशिष्ट पं० मोतीलाल शर्मा हैं। इनकी अवस्था अभी २५ वर्ष की है, किन्तु इन्होंने अपने गुरु ओझाजी के प्रसाद से उनके वैदिक साहित्य के अध्ययन और विवेचन का विपुल लाभ प्राप्त किया है।

पं० मोतीलालजी शतपथ ब्राह्मण, ईशोपनिषत्, गीता हिन्दी विज्ञान-भाष्यभूमिका
प्रकाशित कर चुके हैं। किन्तु पण्डितजी के ग्रन्थों का अधिकांश भाग
उसके प्रकाशन की आवश्यकता है। ग्रन्थों के विषय की सूची देखने से
कि हम प्राचीन वैदिक काल में घूम फिर रहे हैं।

वेद हमारी प्राचीन संस्कृति के मूल हैं, एवं हमारे सब धर्म्म संस्कार
आधार पर स्थित हैं। यदि हमें वैदिक संस्कृति की रक्षा करनी है तो एक मात्र
और एक ही साधन वैदिक साहित्य का प्रचार है। इसलिए जिन लोगों को प्राचीन
आर्य या हिन्दू संस्कृति की रक्षा और प्रचार इष्ट है, उनका यह धर्म है कि वे वैदिक
प्रचार करने वाले विद्वानों को दान और मान से प्रोत्साहित करें।

यह सौभाग्य की बात है कि पण्डित मधुसूदनजी के संचित किए हुए वैदिक साहित्य
ज्ञान उनके शिष्य पं० मोतीलाल शर्मा को प्राप्त हुआ है, और उस ज्ञान को पं०
लिखे हुए अपने स्वतन्त्र ग्रन्थों द्वारा हिन्दू समाज को भेंट कर रहे हैं। पं० मोतीलाल के
थोड़े ही ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, अधिक ग्रन्थ प्रकाशित होने को हैं। उनके प्रकाशित होने
से हिन्दू समाज को लाभ पहुँचेगा। मैं आशा करता हूँ कि जो सज्जन प्राचीन संस्कृति के
गौरव को समझते हैं और जिनको परमात्मा ने दान की शक्ति और श्रद्धा दी है, वे उदारता
से पं० मोतीलालशर्म्मा को उनके कार्य में सहायता देंगे।

पं० मोतीलाल शर्म्मा के व्याख्यान शास्त्रों के प्रमाणों से पुष्ट, [illegible]
ओजस्वी, और रोचक होते हैं। मुझे विश्वास है कि पं० मोतीलाल द्वारा हिन्दू जाति को
सनातनधर्म्म का उत्तम ज्ञान प्राप्त होगा और उसमें श्रद्धा बढ़ेगी।

मैं भगवान् विश्वनाथ से प्रार्थना करता हूँ कि पं० मोतीलालशर्म्मा की वेदसाहित्य संस्था
यथा दिन दिन अधिक विकास पावे और उनका वैदिक तथा अन्य धार्मिक साहित्य के प्रचार का
प्रयत्न सफल हो।

काशी
मकरसंक्रांति, १९९६

मदनमोहन मालवीय

श्री

६-१२-३६

४—महामहोपाध्याय विद्या-वयोवृद्ध श्रीबालकृष्णजी महाराज,
प्रिन्सिपल ओरियन्टल कालेज, काशी हिन्दू-
विश्वविद्यालय, बनारस।

१—यो वेदवारिधिविमन्थनमन्दराद्रिर्विद्यानिधिर्निरवधिर्भुवनेऽद्वितीय ॥
येनार्चिताऽथ मिथिला निजजन्मनापि दुर्दैवतो दिवमगम्मधुसूदनोऽसौ ॥१॥

२—नो पक्षपातकणमात्रमपि निपबिता स्मो नात्युक्तिलेशमपि कीर्तयितुं प्रवृत्ता।
न मो यथार्थमिह मधुसूदनाप्यविद्यावाचस्पतित्वममुना चरितार्थितं स्वम् ॥२॥

३—हानिर्न केवलमियं मिथिलापराया, नो भारतस्य, सहमाऽस्तमयादयं यत् ॥
भाहारि किन्तु सकलस्य महीतलस्य कालेन हन्त मणिरेव पदप्रदीप ॥३॥

४—भारवासनस्य परमत्र निदानमेकमस्माकमेष समकल्पयदाद्रचता ॥
शिष्यं विधाय सुमतिं द्विज'-रत्न'ऽमोती'-लालं निजोत्तमकलाभिरयोजययत् ॥४॥

पद्यों का संक्षिप्त अनुवाद—

१—"जो वेदरूप समुद्र के मन्थने में मन्दराचल पर्वत थे जो पृथिवीमण्डल में असीम, एवं अद्वितीय विद्यानिधि थे जिनने अपने जन्म से मिथिला को पूजित किया वे दुर्दैववश वह मधुसूदन (आज) स्वर्ग गमन कर गये" ॥१॥

२—"हम (प० मधुसूदनजी के सम्बन्ध में) पक्षपात के कणमात्र (अणुमात्र) नहीं हैं। हम (साथ ही में) लेशमात्र भी अत्युक्ति करना नहीं चाहते। (अपितु) यथार्थरूप से यह कहते हैं कि "प० मधुसूदनजी ने बड़े प्रयत्न से भी प्राप्त न होने योग्य अपने विद्यावाचस्पतित्व (बृहस्पतित्व) को चरितार्थ किया है" ॥२॥

३—"(श्री मधुसूदनजी की स्वर्गगति से) न केवल मिथिला की, और न केवल भारतवर्ष की ही हानि हुई है अपितु कालपुरुष ने सम्पूर्ण पृथिवीमण्डल के प्रकाशित रत्नदीप का अपहरण कर लिया है" ॥३॥

४—"(ऐसी विषम) अवस्था में भी हमारे लिए सन्तोष की बात केवल यही है कि, कल्याणहृदय श्रीओझाजी ने बुद्धिमान् द्विजभद्र मोतीलाल को अपना शिष्य बना कर अपनी उत्तम कलाओं से युक्त कर दिया" ॥४॥

१ समुद्र—आसरा, २ रत्न—सत्वगुण ३ मुक्ता—पवल यश, ४ लाल—रक्त—दिवानुपम।

"गीताविज्ञानभाष्यभूमिका" तथा "ईशोपनिषद् हिन्दी विज्ञान भाष्य" यह ग्रन्थद्वय हिन्दी भाषा के गौरववर्द्धक हैं। श्रुतिमूलक सनातनधर्म्म का स्वरूप जानकर आध्यात्मिक और व्यावहारिक सर्वविध अभ्युदय को लाभ करने के लिये जो लोग प्रयत्नशील हैं, उन सभों के लिए वेदार्थज्ञान अत्यावश्यक है। वैदेशिक पण्डितों की दृष्टि से वेदार्थ निर्णय करना सनातनधर्म के अनुकूल नहीं है, प्रत्युत प्रतिकूल है। आस्तिक्य दृष्टि के अनुसार वेदतात्पर्य पर्यालोचन वर्त्तमान समय में सनातनधर्म्मावलम्बियों का सर्वथा कर्त्तव्य है। "गीता विज्ञान भाष्य भूमिका" और "ईशोपनिषद् हिन्दी विज्ञानभाष्य" के रचयिता विद्वद्वर श्रीमोतीलाल शर्म्मा गौड़ ने "वेदविज्ञान की आलोचना वर्त्तमान समय में कैसी होनी चाहिये" यह दिखाते हुए जैसी सरल, पाण्डित्यपूर्ण तथा सुन्दर रीति का अवलम्बन किया है, वह सर्वथा नवीन और प्रशंसनीय है। मेरा पूरा विश्वास है कि—सनातनधर्म्म प्रेमी सहृदय शिक्षित जनता में यह ग्रन्थद्वय विशेषत समादृत होगा।

श्रीप्रमथनाथ तर्कभूषण
महामहोपाध्याय, भूतपूर्व प्राच्यविद्याविभागाध्यक्ष,
हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस

श्री

६—सुप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान्, प्राच्यपश्चिम समन्वयकर्त्ता,
विद्या-वयोवृद्ध श्रीडा० भगवान्दासजी महोदय, एम्०
ए० डी-लिट्, शान्तिसदन 'सिप्रा' बनारस।

श्री मोतीलालजी शर्मा के लिखे ग्रन्थों पर मत

जुलाई सन् १९३१ में जयपुर से लिखा हुआ श्रीमोतीलाल शर्मा का एक पत्र मिला, तथा ६ बड़ी और ४ छोटी पुस्तकें मिलीं—गीता, शतपथ ब्राह्मण, ईशोपनिषत्, माण्डूक्योपनिषत् का भाष्य, तथा इनके अन्तर्गत अन्य बातें, इन ग्रन्थों का विषय है। श्रीमोतीलालजी ने इस पत्र में एक विशेष हेतु से इन ग्रन्थों पर मेरी 'मति' (राय) मांगी।

पहिले तो मुझे वैदिक साहित्य का ज्ञान नहीं के तुल्य है। दूसरे अन्य अनिवार्य कार्यों में बहुत व्यस्त हो रहा हूँ। तीसरे ७१ वर्ष के वयस् में न आँखों में, न मस्तिष्क में इतनी शक्ति और स्फूर्ति रह गई है, और जो बची है, वह भी दिन दिन क्षीयमाण है कि २५०० पृष्ठ शीघ्रता से पढ़ जाऊँ, सो भी ऐसे जिनमें नई शैली के बहुत से अपरिचित शब्द और विचार हैं जिनका

आशय ग्रहण करने में ऐसे पुरुष को भी सरलता न होगी, जिसने [illegible]
अध्ययन अच्छी तरह से किया हो। इन कारणों से कोई स्थिर मति
हुई। यह मैंने श्रीमोतीलालजी को लिखा। बीच बीच में प्रायः १०० पृष्ठ
उलट कर पढ़े भी। ता० १ दिसम्बर को वे श्रीवासुदेवशरणजी के साथ मेरे
काशी विश्वविद्यालय में उनका एक व्याख्यान भी मैंने सुना। दो तीन
वार्तालाप हुआ। श्रीवासुदेवशरण जी एम० ए० पहिले मथुरा में, अब लखनऊ के
म्यूजियम के क्यूरेटर हैं। इनके कुछ लेख मैंने कल्याण के विशेषांक में, तथा एक
तथा एक '[illegible]' नाम की अपनी लिखी पुस्तक में, जो उन्होंने मुझे भेजी या दी थी,
लेख बहुत रुचे थे। उससे मुझे यह जान पड़ा कि, श्रीवासुदेवशरणजी पाश्चात्य (अंग्रेजी)
तथा प्राचीन (संस्कृत-वैदिक) ज्ञानों से भी परिचित हैं, परीक्षक हैं, अच्छा लिखते हैं।

श्रीमोतीलालजी की भाष्य शैली में श्री वासुदेवशरणजी की आस्था है—कुछ
कुछ जो मैंने स्वयं उनके ग्रन्थों के १०० पृष्ठ के लगभग पढ़े उससे कुछ उनकी
जो व्याख्यान में और घर पर सुनी उनसे मुझे विश्वास हुआ है कि, वेद के शब्दों
मन्त्रों के जिन अर्थों का यह उद्घाटन कर रहे हैं, वे विचारशील विद्वानों के ध्यान के
योग्य हैं, और उनका प्रकाश और रक्षण होना चाहिए।

पं० श्रीमोतीलालजी के इस वैदिक साहित्य के सम्बन्ध में मैं यह तो कह सकता हूँ कि,
जो बहुत से मोटे मोटे ग्रन्थ [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible]
में पढ़े पढ़ाये, और आदर किए जाते हैं, और [illegible], मूलमात्र, कुतर्क, कुसिद्धान्त, और [illegible]
का अपव्यय बढ़ा रहे हैं, उनकी अपेक्षा श्री मोतीलालजी की शैली अच्छी है, और इनका
सविचारित रूप से ऐसा प्रचार भी होना चाहिए, जिससे विचारशील, [illegible],
अधिक नहीं तो थोड़ी संस्कृत तथा अच्छी रीति से हिन्दी जानने वाले पाठकों को
इनके लेखों का बोध अनायासेन हो सके।

जो ग्रन्थ इनके मैंने देखे, उनमें कुछ अंश तो निश्चयेन नये विचारशील, और
उपादेय हैं।

वार्तालाप से यह जान पड़ा है कि, इन्होंने अपने गुरु श्रीमधुसूदनजी ओझा महामहो-
पाध्याय से ये विचार पाये हैं। श्रीमधुसूदनजी का देहावसान इसी वर्ष में हुआ। वे जयपुर राज्य
के प्रसिद्ध पंडितों में रहे हैं। उनका लिखा एक छपा हुआ संस्कृत ग्रन्थ मैंने आद्यन्त प्रायः पढ़

का देखा हुआ था। इसमें भी ऐसी ही बातें वैदिक विषयों की थी, जिनका नाम अब लुप्त हो रहा है।

यह मैंने सुना है कि श्रीमधुसूदनझाजी जयपुर के राजपण्डित थे, और विद्यारसिक, स्वयं भी विद्वान महाराज मानसिंह के एकत्र किए हुए प्राचीन पुस्तकों के बड़े आगार पर भी उनका अधिकार था। इससे अनुमान होता है कि, यह शैली, जिसका बिना परम्परा के आधार के एक पुरुष का केवल अपने मन से नई कल्पना कर लेना दुष्कर है श्रीमधुसूदनझाजी को प्रायः किसी प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ से प्राप्त हुई होगी।

इन सब का निष्कर्ष रूप से मेरा 'मत' यह है कि, श्रीमोतीलालजी को पहिले संक्षेप से, समास से मुख्य मुख्य बातों का प्रचार करना चाहिये, पीछे जब पाठकों की रुचि इस ओर बढ़े तब विस्तार से अवान्तर बातों का भी।

ऐसे कार्य में श्रीघनश्यामदासजी बिड़ला पर्य्याप्त आर्थिक सहायता करें तो निःसन्देह भारत के ज्ञान-भण्डार की वृद्धि होगी, और देश का उपकार होगा। मैं आशा करता हूं कि अपने बहुत से उदार दान कार्यों की गणना में इसको भी बढ़ावेंगे।

अन्त में इतना और लिखना आवश्यक है कि, श्रीमोतीलालजी से तीन चार बेर जो वार्तालाप हुआ, उससे, और जो अंश इनके ग्रन्थों का मैं पढ़ पाया उससे मुझे विश्वास हो गया है कि, यह सज्जन बहुत परिश्रमी, सूक्ष्मबुद्धि, और उदार भावों के सत्कार्य में बहुत लगन रखने वाले, और भारत जनता का कल्याण चाहने वाले हैं। आज कल के बहुतेरे पंडितों के से संकुचित दृष्टि और संकुचित हृदय के केवल तात्कालिक स्वार्थ देखने वाले नहीं हैं। थोड़ी उमर में ही इन्होंने बहुत विद्या का संग्रह किया है। अच्छे वाग्मी भी हैं, होनहार हैं। यदि उदार सज्जनों से इनको सहायता मिलती रहेगी तो भारतीय विलुप्तप्राय ज्ञानों के जीर्णोद्धार का काम निष्पन्न कर सकेंगे।

५-११ १९३९ ई० सौर २१-८ १९९६ वि०

भगवानदास

श्री

७—महामहोपाध्याय श्रीगिरिधरशर्म्मा चतुर्वेदीजी महाराज
न्याय-व्याकरणाचार्य, प्रिन्सिपल, जयपुर संस्कृत कालेज, जयपुर।

वैदिकपरिभाषाओं के विश्लेषण में शतपथब्राह्मण का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। पूज्य गुरुवर श्री ओझाजी महाराज तो इसे वेद की कुंजी ही बतलाते हैं। उसी का भाष्य मासिकपत्रिका के

में इस गम्भीर ज्ञान विभूषित ग्रन्थ के विषयों का विवरण कथमपि नहीं किया जा सकता। यह तो परम धैर्य और पूर्ण तन्मयता के साथ मनन करने का ग्रन्थ है। यह तो वेदशास्त्रसम्पन्न विद्वानों के स्वाध्याय करने की सामग्री है।

ईश्वर करे, यह शीघ्र पूर्ण हो। हम समस्त विद्वानों से प्रार्थना करते हैं कि, वे इस ग्रन्थ का अवश्य संग्रह करें और इसे पढ़कर इसकी उपयोगिता का स्वयं अनुभव करें। हम इस ग्रन्थ का पूर्ण प्रचार चाहते हैं और इसके द्वारा वैदिक विज्ञान की अधिकाधिक उन्नति की आशा करते हैं।

सूर्य्यनारायण शर्म्मा
व्याख्यानवाचस्पति न्याय-व्याकरणाचार्य, प्रधान संस्कृत
प्रोफेसर महाराजा कालेज, जयपुर, प्रधान सम्पादक
संस्कृत रत्नाकर

२८-१२-१४

श्री

६-श्रीयुत माननीय 'देवर्षि' श्रीरामनाथजी 'व्यास'
प्रधान तमूपक्ष विद्याविभागाध्यक्ष, नाथद्वार (मेवाड़)

स्वस्ति श्री शास्त्रीजी! आपने शतपथ का अनुवाद प्रकाशित कर, और उसे भी हम लोगों के पास भेजकर दुःख ही दुःख पहुंचाया है सुख तो बहुत ही कम। अङ्क की गणना में, उसके आने की बाट देखने में विलम्ब हो जाय तो प्रकाशक को महा तङ्ग करने में, आने पर भी जल्दी पूर्ण न हो जाय इस प्रवृत्ति में हर एक पृष्ठ के पलटने में, फिर जैसे तैसे पूर्ण होने पर तो अनन्त ही दुःख होता है। मालूम नहीं एक मास कितने वर्षों का होता है। आपकी लेखशैली, भावप्रकाशन, और क्रम दोनों का अनुवाद में जो कुछ चाहिए, सब अतिमधुर और प्रशंसनीय है। अतएव उसका पान करने में अभिप्रीति होती है पर पूर्ण होने की भीति से दिल धुकता ही रहता है यह दुःख भी चलता ही रहता है।

एक एक अंक को दो दो चार चार बार पढ़ते हैं, तथापि तृप्ति नहीं निकलता। आपका परिचय मुझे नहीं है तथापि इस दुःख मे ही यह धृष्टता कराई है। क्षमा! आप कांचन समय अपरिचित होने पर भी आप मुझे चिरपरिचित से मालूम होते हैं। इसलिए क्षमा करने में कष्ट न होगा। सज्जनों के लिए दो अक्षर लिखता हूँ।

१—राजन्यपुत्रदेरोऽस्ति पुरं जयपुराभिधम्। विद्याया सद्गुणानाञ्च धर्मस्य च निवासभूः ॥
२—तत्र भविष्यदुतपथब्राह्मणब्राह्मणवादिनी। मासिकी पत्रिका प्रादुरास्ते विज्ञानवादिनी ॥
३—शास्त्रसम्पन्नमना मोतीलालो वेदविदांवरः। विभूषयति तामर्थां हिन्दी प्राञ्जलभाषया ॥
४—शास्त्र चार्थे च विमला मन्वार्थायनमर्पिका। इत्थं विभूषणं भाषा मोतीलालविरचितम् ॥
५—भवताऽत्र भूषणं का भाषा दिव्यपसुन। का नाम विष्णोर्म्यापदस्य शामा गम्फगामिनः ॥

श्री

११—क. * वैद्यवर्य्य श्रीयादवजी त्रिकमजी आचार्य बम्बई।
ख वैद्यवर्य्य श्रीहरिप्रपन्नजी महाराज बम्बई।
ग विद्वद्वर्य्य महामहोपाध्याय श्रीरमापतिजी मिश्र बम्बई।
घ भद्रेय श्रीमोतीराम कल्याणजी शास्त्री, बम्बई—
(आदि बम्बई के प्रमुख विद्वान्)

आप लोगों को यह जान कर परम हर्ष होगा कि, धर्म एवं आर्यसंस्कृति के मूलभित्तिस्वरूप वैदिक साहित्य पर वैज्ञानिक शैली से जयपुर निवासी वेदमूर्ति, पं श्रीमोतीलालजी शास्त्री के द्वारा लगभग ५ हजार पृष्ठों का (हिन्दी भाषा) में वैदिक साहित्य सम्पन्न हुआ है।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि उदार धनिकों के शुद्ध सात्त्विक सहयोग से यदि यह वैज्ञानिक साहित्य प्रकाशित हो गया तो विज्ञानप्रधान पाश्चात्य जगत् के संसर्ग से अपनी संस्कृति को भुला देने वाली आर्यजाति की प्रबल वेग से बढ़ती हुई धर्मविरोधिनी भावनाओं का समूल विनाश हो जायगा। ।

हमें आशा ही नहीं, अपितु दृढ़ विश्वास है कि विद्वद्गण एवं श्रेष्ठिवग इन ग्रन्थों के पठन प्रकाशन एवं प्रचार कार्य से पीछे न रहेगा ।

श्री

१२—माननीय श्रीधर अण्णाशास्त्री महोदय 'वार' काव्यतीर्थ,
श्रौत-स्मार्त्त-कलानिधि, मीमांसा-धर्म्म-तन्त्रकोविद,
श्रीक्षेत्र, नासिक।

शतपथब्राह्मण का हिन्दी अनुवाद विवेचना युक्त देखा। अवश्य ही आपके इस प्रयत्न से विलुप्तप्राय वेदविद्या पुनः जीवित हो जायगी। पूर्णरूप से प्रकाशित यह ग्रन्थराज सारे विद्वत् समाज को ऋणी बनाएगा। इस कराल कलिकाल में ऐसे ही प्रयत्न सर्वत्र हों तो, धर्मविप्लव निष्फल है। इस महाप्रयास के लिए हम आपका हृदय से सानन्द बार बार अभिनन्दन करते हैं।

श्रीधर अण्णाशास्त्री 'वार'
काव्यतीर्थ, श्रौत-स्मार्त्तकलानिधि, मीमांसा-
धर्म्म-तन्त्रकोविद, श्रीक्षेत्र, नासिक

---

* इस समय पूज्य शास्त्री वेद प्रचारार्थ बम्बई गये थे। वहीं विद्वानों की उपस्थिति में विषय निरूपण पर कई मास तक आपके सायंकालिक भाषण हुए थे। वहाँ के विद्वानों की ओर से यह सम्मिलित रिपोर्ट सम्मति प्राप्त हुई थी जिस के कुछ अंश यहां उद्धृत हैं।

श्रीहरि

१४—श्रीयुत जीवनशङ्करजी महोदय याज्ञिक, एम० ए० प्रोफेसर, हिन्दू विश्व विद्यालय, बनारस।

जो वेद अखिल धर्म का मूल है, और जिसको महर्षियों एवं आचार्यों ने सर्वोपरि प्रमाण माना है उसकी अब इस देश में दुर्भाग्य से चर्चा भी नहीं होती। न तो उसका अब विधिवत् पठन पाठन होता है और न उसका प्रचार। उसका अर्थ जानने वाले दुर्लभ हैं। अतएव उस ज्ञानस्रोत की शोचनीय उपेक्षा हो रही है। आर्य्यजाति की सहिष्णुता उदासीनता अक्षम्य है।

केवल ऐतिहासिक दृष्टि से भी यदि देखा जाय तो संसार का प्राचीन साहित्य वेद है और इस कारण से ही वह परम आदरणीय और उपादेय होना चाहिये परन्तु दुर्भाग्यवश जो साहित्य हमारी धर्ममूलक संस्कृति का एकमात्र आधार है उसको कृतघ्नी होकर हमने बिलकुल भुला दिया है। महाकवि शेक्सपियर की रचना को अंग्रेज़ लोग ब्रिटिश साम्राज्य से भी अधिक मूल्यवान् समझते हैं और आर्य्यजाति की यह दुरवस्था है कि, जो ज्ञानविज्ञान का भण्डार ईश्वर की वाणी और विश्व के रहस्यों की कुञ्जी है, उसी की प्रमादवश आज अवहेलना हो रही है। प्रचुर धन से, ज्ञान से, और बल से विदेशी पंथों का इस देश में प्रचार हो और आर्य्यजाति अपने वैदिक साहित्य की रक्षा भी न करे। फिर वेद की शाखा "कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम्" की उपेक्षा हो तो क्या आश्चर्य और हमारी संस्कृति का ह्रास हो तो किसका दोष?

हिन्दू जाति के सौभाग्य से विद्यावाचस्पति विद्वद्वर श्रीमधुसूदनजी शर्मा ने चालीस वर्ष अनवरत परिश्रम कर वेदों पर विज्ञान भाष्य लिखे। वे भूतल के ऋषि थे। उनकी प्रतिभा चमत्कार और सूक्ष्म अनुपम थी।

शताब्दियों में भी उनके समान पण्डित जिस देश को प्राप्त हो, वह धन्य है। उन्हीं विद्यावाचस्पतिजी के कृपापात्र प्रधान शिष्य पण्डित श्रीमोतीलालजी शास्त्री जयपुरीय ने उनसे वेदविद्या का प्रसाद पाया है। अनवरत परिश्रम और प्रतिभा से शास्त्रीजी ने जो विद्या प्राप्त की है सो दुर्लभ है। उन्होंने वैदिक साहित्य पर लगभग ४० हजार पृष्ठ लिखे हैं, परन्तु उनके प्रकाशन का वृहत् आयोजन अभी नहीं हो सका। जो ग्रंथ श्रीओझाजी महाराज के जीवन काल में प्रकाशित हो सका, उसका उन्होंने स्वयं अनुमोदन किया और भविष्य के लिये उत्साहवर्धक आशीर्वाद भी दिया कि आगे भी यह साहित्य प्रकाशित होता रहे।

शास्त्रीजी के प्रकाशित ग्रन्थों तथा व्याख्यानों से विद्वत्समाज हर्षित और चमत्कृत हुआ है, ओजस्वी भाषा में धाराप्रवाह वेदों की वैज्ञानिक समीक्षा जब शास्त्रीजी करते हैं, तो विद्वान मन्त्रमुग्ध से हो जाते हैं और सामान्य विद्यार्थियों के श्रोता भी विस्मय में चकित रह जाते हैं। कुछ योरोपीय विद्वानों का मत है कि वेद तो केवल "गडरियों के गीत" हैं और हमारे देश में भी

१६–श्रीयुत चन्द्रभानुजी शास्त्री 'पुराणवाचस्पति' भूतपूर्व प्रधानाध्यापक–रामगढ़ संस्कृत कालेज, वर्तमान प्रधानपण्डित श्रेष्ठिवर्य श्रीकेशवदेवजी पोद्दार, गङ्गातीर, हरिद्वार।

एक ओर द्विजातियों को वेद पढ़ने के लिए शास्त्रों में जो प्रबल आज्ञाएँ प्राप्त होती हैं, उन्हें देख कर, उधर वेद की पढ़न और पढ़ान की जो परिपाटी प्रचलित है, उसके द्वारा वेद का अध्ययन करके यह बात समझ में ही नहीं आई थी कि, वह कौनसा तत्त्व मन्त्रों में है, जिसे लक्ष्य करके शास्त्रों ने द्विजातियों को वेद पढ़ने के लिए इतना बाध्य किया है। 'वेदोऽखिलो धर्म्म मूलम्'–"वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः"–"योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्। स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति–सान्वयः" ये सब वाक्य ज्यों की त्यों भूप हैं। किन्तु वेद की धर्ममूलकता और निःश्रेयसकरत्वता का सम्पूर्ण वेद पढ़ने पर भी कुछ भी तो आभास नहीं हुआ। वेद पर जो प्राचीन भाष्य हैं, उनसे भी यह पिपासा शान्त न हुई, जिसके कारण हृदय व्याकुल था। ईश्वरानुग्रह से 'शतपथब्राह्मण' का एक विस्तृत 'हिन्दीविज्ञानभाष्य' दृष्टिगोचर हुआ। इसे देखकर हृदय का वह विक्षोभ शान्त हुआ, जिसके कारण हृदय बहुत दिनों से नितान्त व्याकुल था, और जिसकी शान्ति का कोई उपाय इतना शीघ्र होगा, यह बिलकुल आशा न थी।

अस्तु ईश्वरेच्छा वास्तव में अघटितघटनापटीयसी है। जिस प्रभु ने कृपा कर जगत् के कल्याण के लिए वेद जैसी विज्ञान की अमूल्य निधि दी है, उसी प्रभु ने उस निधि के उपयुक्त पात्र भी पैदा किए हैं। बहुत दिनों से विलुप्त प्रायः इस विज्ञाननिधि का दर्शन श्रीयुत पं० मोतीलालजी शास्त्री द्वारा हुआ है। वास्तव में शास्त्रीजी ने यदि भाष्य लिखकर प्रकाशित न किया होता तो अनन्तकाल से चमकता हुआ वह विज्ञान विद्वत् समाज की बुद्धि में उतना ही तिरोहित रहता, जितना कि नेत्रविहीन की दृष्टि से सदा उदित रहने वाला सूर्य। इस विज्ञानभाष्य के लिखने के लिए हम शास्त्रीजी को हृदय से धन्यवाद देते हैं, और उनके इस प्रयास की पूर्ण सफलता की आशा करते हैं। वेद से प्रेम रखने वाले सज्जनों से हमारी अपील है कि वे वेद का महत्त्व जानने के लिए एकबार इस भाष्य को विचार पूर्वक अवश्य पढ़ें।

चन्द्रभानुशास्त्री
(स्नातक ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, हरिद्वार
'पुराणवाचस्पति' भू० पू० प्रिन्सिपल H R संस्कृत कालेज
रामगढ़ (सीकर) प्र० पं० श्रेष्ठिवर्य श्रीकेशवदेवजी पोद्दार)

१६—श्रीयुत रामदत्तजी शुक्ल, एम० ए० एडवोकेट, लखनऊ।

श्रीमान् महोदय !

अनेक कारणों से आर्षसाहित्य एवं संस्कृत वाङ्मय का व्यापक, प्रभावोत्पादक और गुरुशिष्यपरम्परासमन्वित प्रचार भारतवर्ष में यथापूर्व नहीं हो रहा है। और देशकालिक नितान्त विपरीत परिस्थितिवशात् भाष्यसंस्कार सम्पन्न वैदिक संस्कृति के अनन्य उपासक विद्वान् भी अनेक अपरिहार्य्य कठिनाइयों और असुविधाओं के कारण यथा तथा प्राप्त ज्ञानराशि को भी सुरक्षित बनाए रखने में पूर्ण रूप से सफल नहीं हो रहे हैं।

ऐसी विकराल परिस्थिति में स्वनामधन्य स्वर्गीय श्री पं० मधुसूदनजी ओझा वेदवाचस्पति महाभाग ने अपने सुदीर्घ आयु में अनन्यमनस्कता के साथ वैदिक विज्ञान विवेचन पूर्वक लगभग २०० ग्रन्थों का रहस्य विज्ञान प्रचारार्थ निर्म्माण करके वस्तुतः वैदिकता के प्रत्येक विचारशील व्यक्ति के लिए लोकोत्तर उपकार का कार्य्य किया है। किन्तु खेद है कि, इनके समस्त ग्रन्थ जटिल संस्कृत भाषा में और प्रायः समस्त अभी तक अप्रकाशित रूप में हैं। उनका सर्वसाधारण तक पहुँचना धन और विशेष समय की अपेक्षा रखता है।

तथापि भाषाविदों के कल्याण साधनार्थ श्रीओझाजी के सुयोग्य अन्तेवासी श्री पं० मोतीलालजी शास्त्री जयपुर निवासी ने उसी वैदिक विज्ञान परम्परा का अनुसरण करते हुए अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों को प्रकाशित किया है। अभी तक (१) शतपथविज्ञान भाष्य (२) मावडूक्योपनिषद्विज्ञानभाष्य (३) ईशोपनिषद् विज्ञान भाष्य-भाग १,२, (४) गीताविज्ञानभाष्य भूमिका नामक ग्रन्थ (लगभग २४०० पृ०) प्रकाशित हो चुके हैं, और शेष अनेक ग्रन्थों के प्रकाशन की आयोजना भी हो रही है।

जिस विषम परिस्थिति और असुविधाओं में परिमग्न रहते हुए श्रीमोतीलालजी ने असाधारण पुरुषार्थ करके इन ग्रन्थों को लिखकर स्वयं प्रकाशित किया है, उन सब का अंदाज अनुमान करना पाठक चकित हुए बिना नहीं रह सकते। श्री ओझाजी के चरणों में अधिक से अधिक समय बैठकर अधिक से अधिक ज्ञानामृत पान करना, उनकी सुविधानुसार विशेष लगन पूर्वक अपनी गृहस्थी और प्रेस का उचित प्रबन्ध करना, धन संग्रह कार्य, पुस्तकों का शुद्ध मुद्रण और विक्रय कार्य तथा अन्यान्य विध्नाकीर्ण विधिनिषेधात्मक प्रपञ्चों में संलग्न रहते हुए भी वैदिक विज्ञान प्रधान साहित्य का मौलिक शैली के आधार पर गम्भीर गवेषण पूर्वक सम्पादन करना असाधारण अध्यवसाय और अलौकिक निष्ठा का सूचक है।

जिन महानुभावों ने वैदिक साहित्य के ब्राह्मण आरण्यक एवं उपनिषद् साहित्य का यथोचित गम्भीरता के साथ मनन किया है उनको इन ग्रन्थों में अनेक प्रकार की पारिभाषिक

सुविधाप्रद सामग्री सहज ही में उपलब्ध हो सकेगी और अनेक जटिल रहस्यों का भी समाधान प्राप्त होगा। इनमें भी सन्देह नहीं कि जो वैदिक विज्ञान का स्वरूप शास्त्रीजी ने भाषा जानने वालों के समक्ष प्रस्तुत किया है यह उनके लिए सर्वथा नया है। भाषा में इस प्रकार की पुस्तकों का तो एकान्तत: अभाव है ही, किन्तु संस्कृतज्ञ पण्डितों के लिये भी यह ग्रन्थ नवीन ही है। इस प्रकार के साहित्य से सभी को विशेष विचार सामग्री प्राप्त होगी।

इस प्रकार के साहित्य की अभिवृद्धि से वैदिक विज्ञान की ओर अभिरुचि बढ़ना सम्भव है और ऐसा होने पर अध्यात्मप्रधान आर्यसाहित्य की सर्वाङ्गीण प्रतिष्ठा हो सकेगी इस आशा से पं० श्रीमोतीलाल शास्त्री का अध्यवसाय सर्वथा सराहनीय है और उनके कार्य में जितना भी सहयोग एवं साहाय्य प्राप्त हो सके वह सर्वथा सार्थक है।

२४ शाहूरा रोड, लखनऊ

रामदत्त शुक्ल एम० ए०
एडवोकेट

श्री

२०—श्रीयुत वृहस्पतिजी आचार्य, आचार्य तथा मुख्याध्यापक गुरुकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन।

श्रीमोतीलाल शास्त्री द्वारा शतपथ ब्राह्मण का जो हिन्दी में वैज्ञानिक भाष्य निकल रहा यह वास्तव में हिन्दी जगत् के लिए एक नवीन एवं अमूल्य सम्पत्ति है। संस्कृतानभिज्ञ अंग्रेजी श्मी के विद्वानों के लिए तो उसका पद प्रतिपद नवीन एवं ज्ञानवर्द्धक है ही, किन्तु संस्कृतज्ञ को भी ब्राह्मण-ग्रन्थों की शैली, एवं गूढ़ रहस्य युक्त ग्रन्थियों के सुलझाने में हायक होगा। ब्राह्मणग्रन्थान्तर्गत तत्वों को वेदमन्त्रों द्वारा स्पष्ट करने का बहुत किया गया है, जो जितना भी अधिक किया जाय उत्तम है। और ब्राह्मण ग्रन्थों की नावक एवं यथार्थ का प्रकाशक सिद्ध होगा। वैदिकसाहित्यप्रेमी प्रत्येक आर्य्य के लिए यह ... पठन के काम की वस्तु है। यद्यपि भी धर्म्म प्राण प्रत्येक शिक्षित आर्य हिन्दू को इसे अपनाना चाहिए।

१८–१–३४

बृहस्पति आचार्य
भू० आचार्य तथा मुख्याध्यापक गुरुकुल वि० वि०
वृन्दावन

श्री

२१—* प्राच्यसंस्कारनिष्ठ एक सात्त्विक मुसलमान की वैदिक साहित्य पर अपूर्वनिष्ठा

श्रीनजरअली हसनभाई
गणदेवी चन्द्रवार ता० १९-४-३७

श्री सद्गुरु परमात्मन्

पूज्यपाद पण्डित श्री० मोतीलालजी शर्मा के चरणद्वय में अभेदभावे साष्टांग नमस्कार हो।

ता० ६-४-३७ मंगल (१२ दिन के ऊपर) आप श्री को एक पत्र लिखा था। प्रत्युत्तर नहिं, और कोई समाचार भी आपके तर्फ से सुनने नहिं, तो मायुस (निराश) होकर आज पत्र लिख के आपके वर्तमान कार्य प्रणालिका में विक्षेप तो जरूर होगा, लेकिन आज का पत्र लिखना सिर्फ आशा के रूप में है। और आशा बगैर जीवन जीवन नहिं रहता, फक्त सिर्फ जिन्दगी को बोझरूपी समझ कर जीता है।

आप श्री के तीन व्याख्यान बीते पारसी (बम्बई) में, और एक हीराबाग (जैन मण्डल) में ता० १०-४-३७ शनिवार को रोज रात्री आठ बजे, एक जैन महाशय झवेरी के प्रमुख पदे "अहिंसा धर्म की व्यापकता' का छापे में पढ़ा गया था।

हररोज डाक में आपके पत्र की राह चक्षु से देखता हूँ, परन्तु निराशामेंज आपकी कृपा देख रहा हूँ। निराशा में होने वाली स्थिति माशूक की कृपा का फल इस्लामी सिद्धान्तों में माना जाता है।

मेरे जैसी एक कमी कुत्ते की शुश्रूषा करता हुआ दीन निकल रहा हूँ। इसका प्रथम कुत्ते की बजाये गुलाम लेखक, और गुलाम बजाय आप श्री को मान रहा हूँ। बम्बई सोचता हुआ जयपुर में आपकी गुलामगीरी की लायकात मानसिक तैयार करता हूँ।

आपके दो लेख शतपथ में "दशमहाविद्या" और मरुधात्री में "वेदों का स्वरूप विचार" तीन तीन चार चार बार पढ़ता, आपका मनन किया और वेदों की गहनता और ज्ञान

---

१ सूरत जिले में 'गणदेवी' महियान में रहने वाला यह पवित्रात्मा आयु से लगभग ६० वर्ष का है। वोहरा जाति में उत्पन्न बहुपरिवार-धन सम्पन्न इसने वल्लभ स्वीकार किया। चन्द्र प्रयाग में हान दान व्याख्यानों का पत्रों में देखकर यह बम्बई आया। साक्षात्कार हुआ। इसमें जो यह भावना देखी गई वह अपूर्व थी। आप इसी उपनिषद् के अनन्य भक्त हैं। इसीलिए एक पत्र की प्रतिलिपि यहाँ उद्धृत हुई है।

मरीज़ उदात्मा का अभ्यास और ध्येय की ओर गुलाम का आत्मा लोकोत्तर दृष्टि से देख रहा हूँ। मित्रों से मिली हुई आप की छोटी छोटी दो पुस्तिकाएँ एक प्रारम्भिक निवेदन और दूसरा ईशावास्योपनिषद् का कुछ हिस्सा दर पत्र पढ़ लिया है। आपके यहां पर आने में देर होवे तो एक पुस्तक आपका हस्ताक्षरी एक उपनिषद् जो आप मेरे लिए ठीक समझें, सो मुझ दर्शक में आपका हस्ताक्षर का दर्शन द्वारा हृदय भूमिका का मज्जन करूँ, और आपके प्रति सौभाग्यपत्र तैय्यार करूँ।

चाहे जितना लिखूं पर दर्शन समागम के सिवाय कोई जीवन की योग्य औषधी नहीं है। नामस्मरण तो "अजपा जाप" आप के नाम का हरी पाम में ओतप्रोत है जैसा कि कुलीन नारी के हृदय में अपने पति का जाप बिना रुकावट होता है। ये सब निम्न सिद्धान्त के स्वरूप हैं —

"आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवन्ति"
"न वा अरे मैत्रेयि"

कृपाकांक्षी दासानुदास
नगरमली का वन्दन
(मद्रास)

२२—श्रीयुत डॉ० वासुदेवशरणजी अग्रवाल, एम ए, पी एच् डी डी लिट्
अध्यक्ष पुरातत्त्वविभाग, काशीहिन्दूविश्वविद्यालय, बनारस

पं० श्रीमोतीलालजी शास्त्री के साहित्य का तुलनात्मक परिचय

वैदिक विज्ञान भारतीय संस्कृति का मस्तिष्क है। वेद के बिना भारतीय सभ्यता केवल कबन्ध मात्र है। एवं पहले शौच समस्त विद्या के आचार्य एवं ज्ञानगुरुओं में आध्यपद्धति से प्राप्त होने वाले प्रातिभ ज्ञान एवं ऋतम्भरा प्रज्ञा में प्रस्फुरित होने वाले विज्ञान की अक्षय्य निधि वेदों के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है। भारतीय सभ्यता वेदरूपी महान् अश्वत्थ की छत्रछाया में पुष्पी फली है। इसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं है। भगवान् वेदव्यास ने जो ज्ञानमय प्रदीप प्रज्वलित किया था, उसके लिए भी स्नेह सामग्री का स्रोत वेद ही थे। भगवान् मनु ने आयमहा-प्रजाओं की सनातनी मर्यादाओं को व्यवस्थित करते समय स्पष्ट ही वेद को सब धर्मों का मूल बताया है।

वेदों की यह महनीय प्रतिष्ठा हमारी जाति के समस्त क्रिया-कलापों में श्रद्धा से ओत-प्रोत रही है। इस श्रद्धा को लेकर हम आज भी अपने भावों को व्यक्त करते और समझते हैं। आज पश्चिम से आने वाले ज्ञानालोक ने हमें चुनौती दी है। और हमें इस बात की पड़ताल करने पर विवश किया है कि, क्या यह श्रद्धात्मक भाव आज भी मान्य है। हमारे समाज के अनेक व्यक्ति वैदिक रहस्य अर्थों के ठीक ठीक प्रकाश में न आने से व्यामोह को प्राप्त हो रहे हैं। पश्चिमी संस्कृतज्ञ पण्डितों ने वैदिक साहित्य की ओर कुतूहलपूर्ण दृष्टि से देखा। मानवजाति के आदि ग्रन्थ होने के नाते वेदों का अर्थ करने का भार उनके कन्धों पर आया। उनमें से बहुसंख्यक विद्वान् इस ओर प्रयत्नवान हुए, और यह परम्परा आज तक चली आती है।

भारतीय दृष्टि से वेदों के अगणित रहस्य और मर्म-स्पर्शी का व्याख्यान ब्राह्मण ग्रन्थों में है। स्थिति तो ऐसी है कि, जिनको ब्राह्मण ग्रन्थों का अर्थ नहीं समझ पड़ा उनको वेदों का भाव कभी स्पष्ट हो सकेगा इसमें भी सन्देह है। परन्तु वेद और ब्राह्मणों के इस घनिष्ठ सम्बन्ध का अनादर की दृष्टि से देखने वालों को ब्राह्मणग्रन्थ और उन्हीं के समान रहस्य के प्रतिपादक आरण्यक ग्रन्थ भी व्यर्थ का बखेड़ा जान पड़ा। वेदों के नवीन अध्ययन की पश्चिमी प्रणाली में जान डालने वाले जगत्प्रसिद्ध विद्वान् मैक्समूलर ने आरम्भ में ही इस असमञ्जस को महसूस करके अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास के पृष्ठ ३८९ पर साहस के साथ निम्न-लिखित वाक्य लिखे हैं।

The Brahmanas represent no doubt a most interesting phase in the history of Indian minds but judged by themselves as literary productions they are most disappointing. No one would have

supposed that at so early a period and in so primitive state of Society there could have risen up a literature which for pedentry and downright absurdity can hardly be matched any where. There is no lack of striking thoughts, bold expression of sound reasoning and curious traditions in these collections But these are only like the fragments of a 'torso , like precious gems set in brass and lead The general character of these works is marked by *shallow and insipid grand eloquence by priestly conceit, and antiquarian pedentary – these works deserve to be studies as the physician studies twaddle of idiots and the the raving of madness*

इस उद्धरण में ब्राह्मण ग्रन्थों को पण्डितों की गप्पाष्टक, ऊटपटांग और पागलों की बकवास कहा गया है। यह वाक्य मैक्समूलर ने कुछ सोच समझ कर ही लिखे होंगे। या यह उस परेशानी के उद्गार हैं, जिसमें ब्राह्मणग्रन्थों के पढ़ने के बाद वह पड़ गया था। ब्राह्मणग्रन्थों पर किया गया यह आक्षेप एक तरफ तो ऊपर जाकर वेदों तक भी लागू होता है, और दूसरी तरफ नीचे उतर कर आरण्यक और उपनिषद् ग्रन्थों तक, जो ब्राह्मण साहित्य के अवान्तर भाग हैं, लागू होता है। यदि मैक्समूलर की बात सच है तो अर्वाचीन भारतवर्ष के बच्चे जितनी जल्दी अपने इस बोझे से छुट्टी पा जायँ उतना ही मानवजाति का हित है। हमारे देश में वेदों के जो विद्वान् हैं उनको भी इसी जबान से मैक्समूलर की हाँ में हाँ मिलाते हुए ही देखा जाता है। अंग्रेजी पढ़े लिखे किसी विद्वान् ने अभी तक ब्राह्मणों के अर्थों को प्रकट करने की अपनी स्वतन्त्र तेजस्वी शैली का परिचय नहीं दिया। शेष पश्चिमी विद्वानों के मार्ग तो मैक्समूलर के ही शरणागत हैं। श्रीयुत ...थ ने ऐतरेय और कौषीतकी के अंग्रेजी अनुवादों में तथा ऐग्लिङ्ग ने शतपथब्राह्मण के इङ्ग... ...अनुवाद में 'मक्षिकास्थाने मक्षिका' वाली परिपाटी का ही आश्रय लिया है। इन ग्रन्थों में पढ़े ...मारी बुद्धिगत उलझन सामने आती है।

हमने जब से वेदार्थ पर विचार करना प्रारम्भ किया, यह विप्रतिपत्ति हमारे सामने बड़े ... से उपस्थित हुई। क्या वस्तुतः मैक्समूलर का कथन सत्य है?, अथवा क्या ब्राह्मणभाग के ... इन वाक्यों के पीछे सचमुच कोई युक्तिसंगत अर्थ छिपा हुआ है? इस अनेक ... के समाधान की दिशा सर्वप्रथम हमें जयपुर के श्री पं० मधुसूदनजी ओझा के व्याख्यानों में दिखाई दी।

पण्डित मधुसूदनजी का विशेष परिचय तो पृथक् वर्णन का विषय है। पर यह सच है कि, उन्होंने अपूर्व प्रतिभा के साथ उन्मीलित चक्षु से वेदार्थ के अपूर्व क्षेत्र में एक ऐसी सूक्ष्म गति प्राप्त की था कई सहस्र वर्षों से अभूतपूर्व थी। विश्व के विज्ञान की शक्ति सभी चमत्कृत है।

इसमें भी यहां कहां बड़े आश्चर्यकारी चक्कर आया करते हैं। मनीषी और धीर मनुष्य ही विचार मग्न के इन परिवर्तनों का साक्षात्कार कर सकते हैं। विद्वान मधुसूदनजी ने अपने जीवन में अनवरत तप की साधना से वेदार्थ का बहुत गूढ़ मनन किया, और विलक्षण साहित्यिक शक्ति का परिचय देकर लगभग दो सौ ग्रन्थों की संस्कृत में रचना की। जिनमें से अकेले नासदीय सूक्त पर ही दस वादों का प्रतिपादन करने वाले अहोरात्रवाद, सदसद्वाद, रजोवाद, व्योमवाद, आवरणवाद, अपरवाद, आदि गम्भीर ग्रन्थ हैं। पंडित मधुसूदनजी के जीवन काल में इनमें से कुछ ही छपकर जनता के सामने आ सके। और सो भी संस्कृत में होने के कारण अधिक सम्यक् लोगों के लिए सुगम न बन सके।

हम को तीन बार मधुसूदनजी से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रत्येक बार हमने उन्हें ग्रन्थ प्रकाशन के सम्बन्ध में पूरा चिन्तित देखा और हमारे अन्तःकरण को इससे मार्मिक कष्ट हुआ। अभी सितम्बर मास में मधुसूदनजी का शरीर पूरा हो गया। उनके संस्कृत ग्रन्थ वहीं पड़कर रह गए। अब भविष्य में कभी मनुष्य जाति के सामने व आयंगे यह निश्चय नहीं कहा जा सकता।

इस दुःखप्रद स्थिति के सामने होते हुए भी एक प्रकाश की रेखा सतत हमारे मनमें थी। वह यह कि पण्डितजी के जीवन काल में लगभग १२ वर्षों तक अथक परिश्रम करके जयपुर के पं० श्रीमोतीलालजी शास्त्री ने वह तेजस्वी ज्ञान अपनी अगाध बुद्धि में आत्मसात् कर लिया। जिस विलक्षण सफलता के साथ शास्त्रीजी ने मधुसूदनजी के चरणों में बैठ कर अपने को कृतविद्य बनाया, उसका परिचय विद्वानों को उनके लेख व व्याख्यान दोनों से प्राप्त होता है। पं० मोतीलालजी शास्त्री के हृदय में मधुसूदनजी के वरदान का बहुत ही स्मरणीय विस्तार हुआ है। हमारे राष्ट्र के साहित्यिकों की यदि आज कोई शिरोमणि परिषद् प्राचीनों की पञ्चालपरिषद् के समान जीती जागती होती, तो अवश्य ही उनके दिग्गज आचार्य जयपुर में घटित हुई इस साहित्यिक घटना का उचित मूल्य आँक कर उनकी भरी सम्पूर्ण देशों में फैल देते। परन्तु जैसा यहाँ सब क्षेत्रों में हो रहा है, वैसे ही वास्तविक योग्यता को भी दिग्दिगन्तव्यापी होने के लिये कुछ बाधाओं को पार करना आवश्यक है।

पण्डित मोतीलालजी अपने मंहिष्ठ अध्याय के व्रत को सिद्ध करने के लिए इस समय वैसे ही प्रयत्न में संलग्न हैं। ईश्वरकृपा से उन्हें देश के विद्वान और श्रेष्ठिजनों का ध्यान सींचने में कुछ सफलता मिल रही है।

पं० मोतीलालजी ने अभी तक शतपथ ब्राह्मण के भाष्य के रूप में १२०० पृ० का साहित्य प्रकाशित कराया है। ईश उपनिषद् का विज्ञानभाष्य भी ६०० पृ० में प्रकाशित हुआ है। इसके

अतिरिक्त गीताविज्ञानभाष्यभूमिका, माण्डूक्य उपनिषद् आदि मिलाकर ६०० पृ० और छपे हैं। उन्होंने जिस विशाल साहित्य का निर्माण किया है उसमें से अधिकांश अभी तक प्रकाशन की प्रतीक्षा कर रहा है। उदाहरणार्थ गीताभाष्य की अन्तरङ्गपरीक्षा नामक द्वितीय खण्ड के १००० पृ० जिसमें आत्मपरीक्षा ब्रह्म-कर्म्म-परीक्षा ज्ञान-योगपरीक्षा एवं कर्म्मयोगपरीक्षा सम्मिलित हैं, गीता का तृतीय खण्ड १४०० पृ० जिस में भक्तियोग, बुद्धियोग अर्थात् प्रज्ञायोग एवं गीतासार परीक्षा सम्मिलित है। एवं गीताचार्य्य खण्ड १४०० पृ० जिसमें ६ प्रकार से कृष्णतत्त्वनिरुक्ति सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त गीता पर श्लोक क्रमानुसार वैदिक २४ उपनिषदों पर भी पृथक् पृथक् भाष्य सम्पन्न हुए हैं, जो प्रकाशनापेक्ष हैं। इस प्रकार इस साहित्य का अतुलित विस्तार है।

इस कार्य्य को प्रकाश में लाने के लिए पं० मोतीलालजी यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे हैं। उसमें सफल होने के बाद साक्षात् वैदिक सूक्तों पर मार्म्मिक विवेचन करने का कार्य भी अभी अपेक्षित है। आशा है पण्डितजी को अपने इस कार्य में सफलता मिलेगी।

वितान-पाक आदि भेदों में यज्ञों का रहस्य प्रतिपादन, यज्ञान्तर्गत शस्त्र-स्तोत्र-शस्त्र का विचार, यज्ञाधिष्ठाता मनोमय-प्राणमय-वाङ्मय आत्मा का निरूपण अमृत-मृत्यु प्रजापति, चन्द्रमोममयी श्रद्धा, वाक् प्राण-मन का सम्बन्ध, स्वयम्भू-परमेष्ठी-सूर्य्य-चन्द्रमा पृथिवी पञ्चपर्व, आत्माओं का विचार सप्तऋषि, तेतीस देव, मन-प्राण-वाक्-चक्षु-श्रोत्र पंच वैदिक-विज्ञान निरूपित इन्द्रियाँ, विज्ञानात्मा (बुद्धि), प्रज्ञानात्मा (मन) का परिचय, स्थिति-गति द्वारा ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र अग्नि सोम इन पाच अक्षरों का निरूपण विष्णु-इन्द्र की स्पर्द्धा, हृदय विद्या, या केन्द्र विद्या षोडशी रूप, व्याहृति रहस्य, वषट्कार, भृगु अङ्गिरा-अत्रि का निरूपण, पञ्चाग्निविद्या, कश्यप स्वरूप, यता-सावित्री, गायत्री भेद, योषा-वृषा भाव, हिरण्यगर्भ प्रजापति, अग्नि, सोम, दशाक्षरा विराट् ...त सूर्य, छन्द स्वरूप, वाक्तत्त्व, सत्या आम्भृणी सरस्वती, बृहती, अनुष्टुप् भेदसाली वाक् ...रूपण, लोक गायत्री, साम और सुब्रह्म या त्रयीवेद और अथर्व का रहस्य, देवयान-पितृयाण ... विद्या तपति का रहस्य एक सहस्र गौ विवेचन, पुरोडाश विज्ञान, प्राणलक्षण, अध्यात्म ...नर, वामन, भौम-सौम्य-ऐन्द्र विद्युत, अन्ता आप, कुमेरु-सुमेरु, वेद-सूत्र-नियति, ...-उक्थ-भोग स्याति-गौ-आयु, रेत-श्रद्धा-यश, वाक्-गौ-द्यौ, सोलह कलकोश, मायाबल, आभू अम्ब पृष्ठ-पिता, स्वाहा-स्वधा, संवत्सर का ब्रह्म, शं ब्रह्म, पञ्च-ज्योति, पुष्करपर्ण, सरस्वान् सरस्वती, मन-प्राण अथर्वाङ्गिरा, समुद्र, व्योम, शिवबायु, यमवायु, मातरिश्वा, अश्वत्थ, शिपिविष्ट प्रजापति, काम-कर्म्म-शुक्र, महासुपर्ण, हिरण्मय अण्ड, स्वर्गधरुण, मित्र-वरुण इन्द्रियमन स्वायम्भुवमनु, वृषाकपि, वैवस्वत, ब्रह्मसत्य, ऋषिप्राण, वालखिल्य, आदि सहस्रों परिभाषाओं पर यथाक्रम नया प्रकाश डाला गया है।

इस साहित्य को हम वैदिक विज्ञान की गूढ़ और जटिल परिभाषाओं का एक महाकोश

कर सकते हैं। इस प्रकार का विलक्षण विशदीकरण हमें अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं हुआ। वेद के अनुसन्धान में निरत सत्य के जिज्ञासु विद्वान् ही इसका महत्त्व जान सकते हैं कि, पण्डित मोतीलालजी के द्वारा इन प्राचीन शास्त्रों पर कितना मौलिक प्रकाश डाला गया है। और वह भी भाष्यों का परम्परागत निरुक्त की रक्षा करते हुए। वैदिक तत्त्वज्ञान एक पट है, सूत्र नहीं है। एक सूत्र को पकड़ते ही सारा पट सामने आ जाता है। यह प्रातिस्विक कठिनाई ही व्याख्या की कठिनाई है। फिर भी शास्त्रीजी ने अपना कार्य बड़ी सफलता से पूरा उतारा है। ब्राह्मण ग्रन्थों के जो निगूढ वाक्य हैं, उनका भी समीचीन विशदीकरण हमें प्राप्त होता है।

विश्वव्यापी विराट् विज्ञान के तात्त्विक, तथा हेतुभूत गूढ सिद्धान्तों का जो विवरण आर्ष साहित्य के अनुसार इन भाष्यों में निबद्ध रहा है, उसका प्रचार-प्रसार निस्संदिग्ध भारतीय मानसभूमि में एक एक महत्त्व पूर्ण दिव्य प्रकाश वितत करेगा, यह हमारा दृढ विश्वास है।

प्रत्येक ग्रन्थ पर उसके लेखक की प्रातिस्विक छाप रहा करती है, वह इन ग्रन्थों में भी है। परन्तु यह निश्चय है कि विद्वान् लेखक ने कहीं भी अपने आपको वैदिक परम्परागत विज्ञान के दिव्यमार्ग से स्खलित नहीं होने दिया है। वेद के विज्ञान रूपी महासमुद्र के संतरण करने के लिए अच्छी सामग्री मिल सकती है। इस साहित्य का परिचय अंग्रेजी माध्यम के द्वारा जितना शीघ्र संसार के सामने रखा जा सके, उत्तम होगा।

लखनऊ   वासुदेवशरण अग्रवाल

११, जनवरी १९४७

२३—महामहोपाध्याय विद्या-वयोवृद्ध श्रीगोपीनाथजी कविराज महोदय एम० ए० भूतपूर्व प्रिन्सिपल गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस।

I congratulate Pt. Motilal Sharma on the pains he has taken in trying to present to the World the results of the late Pandit Madhu Sudan Ojha's varied researches in the field of ancient Indian culture and thought. I have had the privilege of knowing Pandit Madhu Sudanji personally for over thirty years and I have glanced through a few of his works. He was an encyclopaedic scholar and a versatile writer with an originality of thinking and range of vision rarely to be found among scholars in this age. His interpretation of Vedic philosophy in terms of rational and scientific thought intelligible to modern mind is as bold as it is unique and comprehensive. He does not follow any particular system of philosophy but method and technique being all his own a fact which often precludes Pandits of the old schools from proper assessment of the merits of his literary contribution. It is a pity that the work of such a great Savant, the labours of a life devoted to silent thinking should remain a sealed book for lack of fund. It is hoped that the liberality of some generous friend will enable these treasures of wisdom to be revealed to the anxious gaze of scholars interested in the subject.

Sd. Gopinath Kaviraj
Mahamahopadhyaya, Retired Principal
Government Sanskrit College,
Benaras.

Benaras
th December 1939

श्री

सामचारपत्रों की अभिव्यक्तियाँ

(१) गुजराती साप्ताहिक बम्बई ता० १२ मी फब्रुअरी सन् १६३७ *

मुम्बईनी जहेर जनता जाणीने खुशी थशे के केम्ब्रीज, ओक्सफोर्ड आदि पाश्चात्य देशोनी युनिवर्सिटीओमां वैदिक विज्ञान नी विजयपताका फरकावनार विश्वविदित महावतार 'विद्यावाचस्पति' श्री मधुसूदनजी ओझा ना प्रधान एवं प्रिय शिष्य, वैदिक विज्ञानना महान् पण्डित जयपुर निवासी पण्डित श्री मोतीलालजी शास्त्री वेदप्रचारार्थ मुम्बईमा पधार्या छे। अत्यार सुधीमा तेमना लगभग आठेक भाषणो थई गया छे। । ता० १४-२-३७ रविवार थी ता० १६-२-१६३७ शुक्रवार पर्यन्त माधवबागमां ऊपरना होलमा वैदिक विज्ञानना विविध विषयो ऊपर तेमनां भाषणो थया हशे। धार्मिक जनता, विशेषत प्रोफेसरो, विद्वज्जनो, स्कूल-कोलेजना विद्यार्थिओ, आर्यसमाजिओ, पारसिओ, वगेरे समस्त जनतामां थी जेमणे तेना लाभ लीधो हशे, तेओने जरूर अपूर्वता विचारवानु मल्युं हशे। जेमणे जेमणे पंडितजीना व्याख्यानो सांभल्या छ, तेओ तो वेदनी महत्ता ऊपर खूबज विचार करता रही गया छे"

(२) गुजराती साप्ताहिक ता० २८ मी फेब्रुअरी सन् १६३७ *

अमे अपने पोताना धन्य समजिए छीए के, वर्तमान पत्र प्रेमी वाचको नी सेवामां पण्डितजी मोतीलालजीना आ अभूतपूर्व 'वैदिक विज्ञान रहस्य संदेशा' रजु करी आजना व्याख्यान नां टु क सार आर्यजनता सामे राखीए छीए। अमने केवल आशाज नहिं परन्तु दृढ विश्वास छे के पण्डितजीना आ विज्ञान सूर्य भारतवर्षमा फेलाई रहेल विविध प्रकारना साम्प्रदायिक अन्धकारनो [illegible]न विनाश करी फरीथी एकत्वमूलक राष्ट्रियभावनानु पाठ भणावी भारतवर्ष ने सर्वोत्तम [illegible]ान शिखर पर पहुँचावशे ।

आ सारांश प्रजासमक्ष रजु करतां कहेवामा अमने कंई पण संकोच थतो नथी के पण्डितजी ना आ गुरुतम वैज्ञानिक व्याख्यानो सदन मननयोग्य अने मननीय सामग्री छे। आवी अमे जनता ने विनती करीए छीए के तेमणे पण्डितजी नी आ विज्ञान राशि नो लाभ लेवो। ।

---

* सन् १६३७ में शास्त्रीजी लिखित वैदिक साहित्य के प्रकाशन का आयोजन लेकर बम्बई गये थे। वहाँ भिन्न भिन्न स्थानों पर लगभग ७ मास प्रचार हुआ। वहाँ के व्याख्यान अविकल रूप से साप्ताहिक 'गुजराती' में प्रकाशित होते थे। उसी पत्र के कुछ एक उद्धरण यहाँ उद्धृत हुए हैं।

आवाज निःसंदिग्ध छे के जगदीश्वर धर्मरक्षाने माटे समय समय ऊपर पोताना महान विभूतियोद्वारा भारतवर्षमां अवतरण करे छे। पण्डितजी ना अभूतपूर्व अने अद्भुत वैज्ञानिक तत्त्वोने ज आ महानुभावोए सामर्थ्यो छे, तेमज आ विद्वानाए पण्डितजी ना प्रकाशित एवं अप्रकाशित ग्रन्थोनुं अवलोकन करवानुं सौभाग्य प्राप्त कर्युं छे, तेमने आ वात मानी लेवामां पण अड़चन नथी के, निःसन्देह आ विज्ञानसूर्य अवश्यमेव एकवार फरीथी भारतवर्षमां वैदिक-वैजयन्ती फरकावशे ।

जेम जेम पण्डितजी मोतीलाल शर्मांना व्याख्यानो थतां जाय छे, तेम तेम अहींनी समझू प्रजा आ व्याख्यानोमां खूब खूब प्रमाणमा रस लती जाय छे। पण्डितजी नी व्याख्यान शैली थी, तथा मार्मिक उदाहरणो देवानी, तथा वात्सल्य दर्शाव थी विषय सम्पादन करवानी सचोट डवोटा थी अहींनी विद्वत् समाज पण आश्चर्य मुग्ध थने छे ।

पण्डित मोतीलालजी आ राष्ट्रभाषा हिन्दीमां प्रायः भिन्न भिन्न विषयो पर अटक मा हैत्य लखी तैय्यार राख्यू छे । पोताना जीवन ने सर्वात्मना वैदिक साहित्य न अर्पण करी आ वदमूर्त्ति लाखो रुपियाथी साध्य बनावाई आ ग्रन्थप्रकाशन नु कार्य भारतवर्षना समजी भावभावना युक्त धनिकवर्ग, एवं विद्वद्वर्गनी आर्थिक सहाय वगर कम करी सके ?

आ कार्य केटलू महत्त्वपूर्ण थयु छोइए, ते ववारता पण्डितजीए रमापतिजीए कह्यु के ते द्वारा भारतवष ना आजनी शीक्षणने थोड़ा समय फेर राखशे।

(२) 'आज' काशी, मिती सौर ६ माघ सम्वत् १९९६

(माननीय श्रीविष्णुराव पराड़कर, महोदय का सम्पादकीय)

हमारा वेद

वेदों पर विश्वास करने वाले कहते हैं कि ऐहलौकिक कल्याण और पारलौकिक सुख के साधन वेद में हैं। अभ्युदय और निःश्रेयस् दोनों वेदों की आज्ञा पालन करने से प्राप्त होते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि भारत की संस्कृतिका मान वेदों से प्रारम्भ होता है। भारत में जो कुछ उत्तम था और है वह वेद में मिल सकता है। इतना तो उनको भी मानना पड़ता है जो वेद को आप्तवाक्य नहीं मानते जो हिन्दू नहीं हैं। इस बात को मानने पर यह प्रश्न सब विचारशीलों के सम्मुख—विशेषकर सदाचारी हिन्दू के सम्मुख उपस्थित होता है कि, यदि वह वैभव और निःश्रेयस् दोनों के दाता हैं तो आज हमारी यह दुर्दशा क्यों है ? निःश्रेयस् के सम्बन्ध में हम कुछ कह नहीं सकते। वह बुद्धि से परे की बात है। ज्ञानेन्द्रियाँ वहां कुण्ठित हो जाती हैं। वस्तुतः क्या हो रहा है यह तो हम जानते हैं। हमारी आज संसार में कैसी शोचनीय अवस्था हो रही है, यह

है कि इसमें क्या है और उनके मनमें भी यही प्रश्न उपस्थित होता है जो हमने इस लेख के प्रारम्भ में किया है— वेद में यदि अभ्युदय और निःश्रेयस् के उपाय बताये गये हैं तो हमारी यह दशा क्यों है ? इस प्रश्न का उत्तर उपलब्ध भाष्यों में नहीं मिलता है। इसके लिए गम्भीर अध्ययन और तपस्या की आवश्यकता है। यह कार्य भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न पुरुष अपनी बुद्धि और मति के अनुसार कर रहे हैं।

स्वर्गीय वेदवाचस्पति पण्डित मधुसूदनझा ने कई विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ लिखे और उनके सुयोग्य शिष्य पण्डित मोतीलाल शास्त्री बड़ी लगन और योग्यता से वही काम कर रहे हैं। काशी में आपके व्याख्यान जिन्होंने सुने हैं उन्हें आपके व्यापक अध्ययन और कुशाग्रबुद्धि का कुछ परिचय मिला ही होगा। आपने अब तक ५० हजार पृष्ठ इस विषय पर लिखे हैं जिनमें कोई पाँच हजार पृष्ठ मुद्रित हैं। इनमें शतपथ ब्राह्मण और गीताभाष्य का प्रस्तावना खण्ड विशेषरूप से उल्लेखनीय है, पर हमारी गुणग्राहकता ऐसी है कि इस मनीषी को इस काम के लिए अब तक आर्थिक हानि ही उठानी पड़ी है। हमें जान कर सन्तोष हुआ कि कलकत्ते के कुछ धनी और अपनी संस्कृति से प्रेम रखने वाले मारवाड़ी सज्जनों ने इसमें सहायता देने का वचन दिया है। भारत की प्राचीन संस्कृति का बचाव का यही सर्वमान्य उपाय है कि वेद के शुद्ध तत्त्व का व्याख्यान होता रहे।

वरमूर्ति पण्डित मोतीलालजी शास्त्री का व्याख्यान जिसने एक बार भी सुना है वह उसे कभी भुला नहीं सकता। आपके भाष्य से कहीं कहीं किसी को सन्देह हो सकता है अनेकों को आपका दृष्टिबिन्दु विचित्र भी मालूम हो सकता है। यह स्वाभाविक है। 'नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्', 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना, तुण्डे तुण्डे सरस्वती' आदि उक्तियाँ सत्य हैं, पर हम इतना असन्दिग्ध चित्त से कह सकते हैं कि पण्डित मोतीलालजी का वैदिक साहित्य का अध्ययन और मनन आश्चर्यजनक है। आपकी उम्र के विचार से तो कहना पड़ता है कि आप विशेष प्रतिभा से भूषित हैं। वैदिक मन्त्रों और आख्यायिकाओं का आप जैसा अर्थ करके उनकी संगति लगाते हैं वह वस्तुतः न केवल आश्चर्यजनक वरंच भारतीयों में पुनः स्वाभिमान और आत्मविश्वास उत्पन्न करने वाला है। वैदिक साहित्य के सम्बन्ध में कहा गया है कि वह अभ्युदय और निःश्रेयस् दोनों की कुंजी है। यदि यह सच है तो मानना ही पड़ेगा कि वह कुंजी इधर की सदियों के भाष्यों की अवमनता में खो गई है क्योंकि यह भारतीय विज्ञान के पास होता तो भारत की यह दुर्दशा कभी नहीं होती। गत रविवार को नागरी प्रचारिणी सभा-भवन में 'प्रसाद व्याख्यान माला' के सिलसिले में आपका 'ऋषि-सम्प्रदाय' पर भाषण सुन कर अनेकों की यही धारणा हुई है कि, वास्तव में हमारे वैदिक साहित्य में सब कुछ है पर हम उससे वंचित हो गये हैं। यह अत्यन्त दुःख की बात है। काशी के विचारशील पुरुषों और होनहार युवकों से हमारा अनुरोध है कि वे शास्त्रीजी के व्याख्यान अवश्य सुनें। आज इस रात संध्या ४॥ बजे से सभा-भवन में आपका व्याख्यान होगा।

(६)–विश्वमित्र कलकत्ता २७ अगस्त सन् १९३८

जयपुर निवासी पण्डित मोतीलालजी शास्त्री ने कलकत्ते में अनेक विद्वत्तापूर्ण सारगर्भित व्याख्यानों से यह स्पष्ट कर दिया कि, मारवाड़ी समाज में एक ऐसा विद्वान् है, जो अपने वैदिक-साहित्य-ज्ञान से विद्वानों को भी चकित कर सकता है। । आपने अनेक नवीन पर्वे बतला कर श्रोताओं को मुग्ध कर दिया। स्थानीय 'संस्कृत साहित्य परिषद्' के विद्वानों ने आपके पाण्डित्य की सराहना की, और मारवाड़ी समाज को बधाई दी जिसमें आज एक ऐसा विद्वान दिखायी दे रहा है। ।

'राष्ट्रभाषा हिन्दी में पर्वों के गूढ़ तत्त्व सुन्दर रूप से प्रकाशित होने पर भारतीय संस्कृति की रक्षा होगी, और पर्वों की जानकारी होने से भारतीय जनता उन्हें अपनाने में समर्थ होगी

(७)–'मारवाड़ी' मासिक वर्ष ३, संख्या १, जुलाई सन् १९३८ (सम्पादकीय)

मरुभूमि के एक कोने में रहने वाले एक सात्त्विक ब्राह्मण के हृदय में ज्ञान की एक लहर पैदा हुई कोई जबर्दस्त अदृष्टिप्रेरणा जाग उठी, आनन्द का स्रोत उमड़ चला, भावना जाग्रत हुई और उसने दृढ़ संकल्प किया कि शान्ति और आनन्द की तलाश में भौतिक धाद के पीछे भटकते हुए, अपने स्वरूप और अपनी निधि को भुलाए हुए, झूठी मृगमरीचिका के पीछे दौड़ते हुए भाइयों को उस स्रोत का पता लगाया जाय, और उस स्रोत के रास्ते से शान्ति और आनन्द के उस अगाध समुद्र का पता लगाने की फिराक में लोग सचेष्ट हों।

अपने संकल्प को सफल बनाने के लिए सिलसिले में यह ब्राह्मण-कुमार भ्रम में भूले हुए अपने भाइयों का निमन्त्रण पाने की प्रतीक्षा न कर स्वयं इस कलकत्ता नगरी में एक दिन अचानक आ धमका। जिस दिन यह कलकत्ता के स्टेशन पर उतरा उस दिन यहाँ पर न तो कोई उसका नाते रिश्ते वाला ही था और न कोई जानकार ही। न यह ऐसी तड़कीली भड़कीली, या आडम्बरयुक्त वेश-भूषा ही धारण किए था, और न आजकल के लिए अत्यावश्यक अंग्रेजी भाषा का ही यह जानकार था।

उसके पास था तो केवल उस अमृत स्रोत के संसर्ग से पैदा हुआ जबरदस्त आत्मविश्वास और अपने संकल्प को पूरा करने की जादू की-सी लगन। आते ही इस कम्मवीर ने बाइन और न बाइन की परवा न कर आँख मीचे हुए, मुँह हिला हिलाकर 'ना' 'ना' करते हुए लोगों के कानों में अपनी प्रभावोत्पादिनी वक्तृत्वशक्ति के द्वारा उपनिषदों के पर्वों की चर्चा आरम्भ कर ही तो दी। एक दिन नहीं दो दिन नहीं लगातार दो महीने तक उसने धाराप्रवाह भाषण दिए और तब देखा गया कि लोगों को अपनी ग्राम का भूला हुआ स्वाभाविक स्थान याद आया और मधु के लोभी

फिर भी हमारे लिए यह गौरव की बात है कि कुछ ऐसे विचित्र और ढङ्ग से वैज्ञानिक आधार पर इन बातों को पंडितजी ने रखना आरम्भ किया कि, नास्तिक कहलाने वाले भी आस्तिकता की ओर आकृष्ट होने लगे हैं। आपने इस अथाह साहित्यराशि के कुछ गूढ़ तत्वों का दिग्दर्शन इस थोड़े काल में कराया, लेकिन वह सब भी इतना विशाद है कि उसे हजम करने के लिये वर्षों का अध्ययन अपेक्षित है। फिर भी बहुत सी मोटी मोटी बातें ऐसी हैं, जो साधारण बुद्धि वालों के लिए भी सहज ही बोधगम्य और लाभदायक हो सकती हैं।

पण्डितजी ने इस थोड़ी सी उम्र में ही अध्ययन के साथ ही साथ वैदिक साहित्य पर हिन्दी में भिन्न-भिन्न विषयों पर करीब ५० हजार पृष्ठ लिखे हैं। जिनमें से कुछ तो प्रकाशित हो चुके हैं, बाद शेष को प्रकाशित कराने का आयोजन हो रहा है।

पण्डितजी ने हमें जो चीज दी है, तथा हमें जो कल्याण का सन्देश सुनाया है उसके लिए कलकत्तावासी उनके चिरकृतज्ञ रहेंगे। परमात्मा करे आपकी प्रतिभा दिन दुनी रात चौगुनी बढ़े, और आप अपने शुभ संकल्प में अधिकाधिक सफलता प्राप्त करें। समाज को आज ऐसी-ऐसी विभूतियों की जबदस्त आवश्यकता है।

(८)–'आर्यमित्र' आगरा (संयुक्त प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि-सभा का मुखपत्र)

शतपथ भाष्य के प्रत्येक खाड़ में कुछ न कुछ नवीन विषय रहता है। कभी छन्द का, कभी प्राणों का स्पष्टीकरण हुआ है। अब तक हम देव–देवता को एक ही अर्थ का वाचक समझते थे। इस ग्रन्थ के आठवें खाड़ में इनके भेद का इतना सुन्दर निरूपण हुआ है कि पढ़ कर चित्त प्रसन्न हो जाता है। साथ ही में हम शास्त्रीजी से प्रार्थना करते हैं कि वे प्रतिपाद्य विषय का और भी अधिक स्पष्टीकरण करें। कारण ऐसा आयोजन शताब्दियों में कभी एक बार ही होता है।

श्री

अभिनन्दनपत्राणि

महामाननीय—'विद्यावाचस्पति' श्रीमान् पं० मोतीलाल

शास्त्रि—महोदयेभ्यः

स्वागतम्

प्रेमाम्भश्चासरणेषु तेऽतिविमल, हृन्मन्दिर सम्मुखे ।
सद्भावैः कुसुमैः सुगन्धि—सहितैर्दर्पाभ मुक्ताफलैः ॥
सूक्तिभिस्तुतिभिः कथाभिरधुना विरलैस्तु निष्किञ्चनैः ।
विद्वन् मानसहंस ! सद्गुणनिधे ! त्वत् स्वागतं स्वागतम् ॥१॥

भाषाः सन्ति सहस्रशः परमहो मान्यैव या संस्कृता ।
तद्भेदा बहवस्तथापि विबुधा वदन्तु भेदोऽस्ति स ॥
ज्ञातारः प्रथमं तु तस्य विरला किन्तेऽपि सर्वे समा ।
तत्प्रकरं तु विभात्यय गुणिवर "श्रीमोतिलालः" सुधी ॥२॥

कलौ दर्शे दर्शे निजकुलचतुर्वेदमरणम् ।
चिराच्चिन्ता—मग्नु विधिरमृतमार्पडं रचितवान् ॥
ददौ तथास्मैऽस्मा बहुगुणगुणालङ्कृत इति ।
तत्त्वद् वर्षन् सुखयति चिरं सदरसिकान् ॥३॥

या च कीर्तिम किलाऽऽमता त ।
कलिन्दजा यद्—नदी—समाने ॥
तीर्थराजाभिध विभाति ।
सरस्वती यस्त्वपि मात्यगुप्ता ॥४॥

"वद्याभम्पति" श्रीमान् सर्वशास्त्रविशारदः ।
स्पर्द्धीयमीपस रम्यं रञ्जयत्यखिलान् जनान् ॥५॥

समर्पक—

विड़लासंस्कृतकालेज, काशी

श्रीमन्वे भारतीम्

श्रीमतां सत्प्रमतां भवतामशयसच्छास्त्रानुशीलन-परिष्कृत-प्रतिपदां, सनातनधर्म्म-धुरन्धराणां, लोकोत्तर-विराजमान-यशो-विभाऽऽभासितदिगन्तरालानां, विनयविभूषित-वपुषां, वेदविद्या-प्रचारपरायणानां, मरुमण्डल-मार्त्तण्ड-"श्रीमोतीलाल"-शर्म्मशास्त्रि महोदयानां करकमलयो "भारतमित्रमण्डल"-समर्पितम्—

अभिनन्दन-पत्रम्

रजो शुभ्रं रक्तः सृजति समये विश्वमखिल,
सिततिम्ना यत् स्वेन प्रभवति पुनः पालनविधौ ।
समस्त सर्गान्ति हरति तमसा पूर्णमय यत्,
प्रसभन्ते भूपामपन-युगस्त शैलदुहितु ॥१॥

माम्य-ध्वान्त-धुरन्धरस्य जगतो दृष्ट्वा मुहुर्दुर्दशां,
वेद-ज्ञानविभा-विकासमय यः प्राचीकरद् भूतल ।
सोऽयम्पाटित-वर्क-कर्कशमहावादीभकुम्भस्थली,
'मोतीलाल' महोदय भुवि-स्वच्छन्द-कण्ठीरवः ॥२॥

कालेय-काल-करवाल-करालपातैः,
पीडा भुवीः भुतमते, यदुदारयुद्ध्या ।
प्राचीकरा पुनरपि प्रथित प्रभावा,
किं वर्णयाम तव तत् प्रतिमामकल्पम ॥३॥

ध्वस्ते ध्वस्ते समस्त निगमनिगदित सुप्रशस्ते क्रियौघे,
दीने दीने विलीन विपदि, विद्वत्सु ज्ञान-विज्ञानकोशे ।
प्राप्ते काले करालेऽनुभवति महतीं दुर्दशाम्भारतेऽस्मिन्,
"मोतीलाल" प्रभूयात् पुनरपि-भविमान पालनेऽस्य प्रजानाम् ॥४॥

मित्रं वेदविदां, रिपुर्विवदतां, सम्मानपात्र सतां,
भद्देयो विषयावतां, प्रतिकृति शीलस्य काश भुत ।
विद्या-बुद्धि-विवेकवारिधिरपि पीयूषवाक् पण्डितो,
"मोतीलाल" महोदयः भुव-यशा जीयात् समानां शतम् ॥५॥

भद्रवनी वाराणसी
पौ शु० प्रतिपद् १९९९

शुभमामकः—
भाधाप्रसादचतुर्वेदी 'बालकवि'

मन्त्री भारत मित्रमण्डलस्य

श्री

वेदाचार्य्यवरो 'महा'न्वित 'महोपाध्यायधन्योऽभवत् ।
यस्यां "श्रीप्रमुदत्तमिभ" विबुधः कश्चिद्विपश्चित्तम
तद् सारस्वत-सुस्थविप्रविकृति "सवृद्धेदविद्यालय" ।
सोत्कर्षे सुविभाति सुन्दरतरो "रानीभवानी" पथि

अभिनन्दनम्

श्रीमतां धर्मतां भवतां परममाननीयानां विश्वविख्यात
विमलयशसां, विद्वत्सवैदिकसाहित्याधुनिकसमुदारधर्मा,
सनातनधर्मधुरन्धरस्यां, वाचस्पतीनामिव वेद-
वाचस्पतीनां, वेदाभिनवभाष्यकराणां महा-
मान्यानां वेदमूर्ति भक्तेय-श्रीमोतीलाल
महोदयानां मदनीयसेवायां

सादरम्

विज्ञानरोवधिसमस्तजगत्प्रसिद्ध
श्रौतप्रपञ्चशतपत्रसहस्ररश्मि ।
प्रौढप्रतापविभवोद्भवमञ्जुलश्री
श्रीमोतिलालविबुधः सुचिरं चकास्तु ॥

भवदीया—श्रीप्रमुदत्त-वेद विद्यालयस्याशच्छात्रा ।
सद्वेदविद्यालय —काशी

श्वेतक्रान्ति का महान् उद्घोष—

भारतीय मानव के प्रति—

(१) हमारे राष्ट्र का 'गन्तव्यपथ' एक हो ! (सङ्गच्छध्वम्) ।
(२)—हमारे राष्ट्र की 'भाषा' एक हो ! (संवदध्वम्) ।
(३)—हमारे राष्ट्र के 'विचार' एक हों ! (सं वो मनांसि) ।
(४)—हमारे राष्ट्र की 'मननशैली' एक हो ! (समानो मन्त्रः) ।
(५)—हमारे राष्ट्र की 'विधानसमिति' एक हो ! (समितिः समानी) ।
(६)—हमारे राष्ट्र के 'मनोभाव' एक हों ! (समानं मनः) ।
(७)—हमारे राष्ट्र की 'प्रज्ञा' एक हो ! (सहचित्तमेषाम्) ।
(८)—हमारे राष्ट्र की 'गुप्तमन्त्रणा' एक हो ! (समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः) ।
(९)—हमारे राष्ट्र का 'आभ्यन्तर संकल्प' एक हो ! (समानी व आकूतिः) ।
(१०)—हमारे राष्ट्र का 'केन्द्रबिन्दु' एक हो ! (समाना हृदयानि वः) ।
(११)—हमारे राष्ट्र का 'अन्तर्जगत्' अभिन्न हो ! (समानमस्तु वो मनः) ।

विश्वमानव के प्रति—

(१)—विश्वमानवो ! आप अपने आत्मानुगत 'चित्'स्वरूप को अभिव्यक्त करो !

(२—विश्वमानवो ! आप अपनी बुद्ध्यनुगता 'विपश्चा' का विस्तार करो !

(३)—विश्वमानवो ! आप अपनी मनोऽनुगता 'प्रज्ञा' का आधान करो !

(४)—विश्वमानवो ! आप अपने शरीरानुगत 'भूत' का सन्तनन करो !

)—विश्वमानवो ! आप अपनी 'मूलप्रकृति' को सत्य बनाओ !

—विश्वमानवो ! आप अपने मानवस्वरूप के आधार पर 'समाज' को प्रतिष्ठित करो !

विश्वमानवो ! आप इसी अनवद्या प्रजा का 'तन्तुवितान' करो !

(८)—विश्वमानवो ! रोदसी त्रैलोक्य के प्राकृतिक 'प्राण' का समन्वय प्राप्त करो

(९)—विश्वमानवो ! पशुभाव से अपना आत्मत्राण करो !

(१) विश्वमानवो ! 'मानव' की महती अभिधा को सत्य बनाओ !

(११)—विश्वमानवो ! अभिदेश भारत को अपना आदर्श मानो !